

नमस्ते जी

ऋषि दयानंद द्वारा प्रचारित वैदिक विचारधारा ने सैकड़ो हृदय को क्रन्तिकारी विचारो से भर दिया | जो वेद उस काल में विचारो से भी भुला दिए गए थे | ऋषि दयानंद ने उन हृदयों को वेदों के विचारो से ओतप्रोत कर दिया और देश में वेद गंगा बहने लगी | ऋषि के अपने अल्प कार्य काल में समाज की आध्यात्मिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत विचार धारा को बदल के रख दिया | ऋषि के बाद भी कही वर्षो तक यह परिपाटी चली पर यह वैचारिक परिवर्तन पुनः उसी विकृति की और लौट रहा है | और इसी विकृति को रोकने के लिए वैदिक विद्वान प्रो० राजेंद्र जी जिज्ञासु के सानिध्य में "पंडित लेखराम वैदिक मिशन" संस्था का जन्म हुआ है | इस संस्था का मुख्य उद्देश्य वेदों को समाज रूपी शरीर के रक्त धमनियों में रक्त के समान स्थापित करना है | यह कार्य ऋषि के जीवन का मुख्य उद्देश्य था और यही इस संस्था का भी मुख्य उद्देश्य है | संस्था के अन्य उद्देश्यों में सम्लित है साहित्य का सृजन करना | जो दुर्लभ आर्य साहित्य नष्ट होने की और अग्रसर है उस साहित्य को नष्ट होने से बचाना और उस साहित्य को क्रम बद्ध तरीके से हमारे भाई और बहनों के समक्ष प्रस्तुत करना जिससे उनकी स्वाध्याय में रूचि बढ़े और वे तुलनात्मक अध्यन कर सकें जिससे उनकी स्वधर्म में रूचि बढ़े और अन्य मत मतान्तरो की जानकारी उन्हें प्राप्त हो और वे विधर्मियो द्वारा लगाये जा रहे विभिन्न आक्षेपों का उत्तर दे सकें विधर्मियो से स्वयं भी बचें और अन्यो की भी सहयता करें | संस्था का उद्देश्य है समाज के समक्ष हमारे गौरव शाली इतिहास को प्रस्तुत करना जिससे हमारा रक्त जो ठंडा हो गया है वह पुनः गर्म हो सके और हम हमारे इतिहास पुरुषो का मान सम्मान करें और उनके बताये गये नीतिगत मार्ग पर चलें | संस्था का अन्य उद्देश्य गौ पालन और गौ सेवा को बढ़ावा देना जिससे पशुओ के प्रति प्रेम, दया का भाव बढ़े और इन पशुओ की हत्या बंद हो, समाज में हो रहे परमात्मा के नाम पर पाखण्ड, अन्धविश्वास, अत्याचार को जड़ से नष्ट करना और परमात्मा के शुद्ध वैदिक स्वरुप को समाज के समक्ष रखना, हमारे युवा शक्ति को अनेक भोग, विबिन्न व्यसनों, छल, कपट इत्यादि से बचाना |

इन कार्यो को हम अकेले पूरा करने का सामर्थ्य नहीं रखते पर, यह सारे कार्य है तो बड़े विशाल और व्यापक पर अगर संस्था को आप का साथ मिला तो बड़ी सरलता से पूर्ण किये जा सकते है | हमारा समाजिक ढाचा ऐसा है की हम प्रत्येक कार्य की लिए एक दुसरे पर निर्भर है | आशा करते है की इस कार्य में आप हमारी तन, मन से साहयता करेंगे | संस्था द्वारा चलाई जा रही वेबसाइट www.aryamantavya.in और www.vedickranti.in पर आप संस्था द्वारा स्थापित संकल्पों सम्बन्धी लेख पड़ सकते है और भिन्न-भिन्न वैदिक साहित्य को निशुल्क डाउनलोड कर सकते है | कृपया स्वयं भी जाये और अन्यो को भी सूचित करे यही आप की हवी होंगी इस यज्ञ में जो आप अवश्य करेंगे यही परमात्मा से प्रार्थना करते है |

जिन सज्जनों के पास दुर्लभ आर्य साहित्य है एवं वे उसे संरक्षित करने में संस्था की सहायता करना चाहते हैं वो कृपया निम्न पते पर सूचित करें

ptlekhram@gmail.com

धन्यवाद् !

पंडित लेखराम वैदिक मिशन

आर्य मंतव्य टीम



AryaMantavya
Make The Whole World Noble

॥ ओ३म् ॥

अग्निहोत्र व्याख्या।



संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

हे मनुष्यो! ईर्षा, द्वेष, विरोध छोड़कर सब संसार निवासी एक सार्वभौमिक राज्य में परस्पर मिल कर रहो। इस से सब दुःख नाश होंगे और सुखों की उपलब्धि होकर वृद्धि होती जावेगी। एक ही भाषा (संस्कृत) के बोलने वाले होते हुवे, छलयुक्त दलीलों को त्याग कर सत्य परायण हो, केवल सत्य निश्चय के उद्देश्य से सभायें किया करो। तुम लोग अपने यथार्थ ज्ञान को नित्य बढ़ाते रहो; जिस से तुम ज्ञानी होकर नित्य आनंद में बने रहो और तुम्हें धर्म का सेवन तथा अधर्म का क्षय करना चाहिये। जैसे पक्षपात र-

हित धर्म्मात्मा विद्वान् लोग वेदरीति से सत्यधर्म का आचरण करते हैं, उसी प्रकार से तुम भी करो, क्योंकि यही कल्याण का एक बड़ा साधन है।

सब आर्य्य सज्जनों को ज्ञात है कि मनुष्य के लिये, प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करने की आज्ञा ऋषि गण ने दी है, जैसे पूज्यपाद मनु भगवान् लिखते हैं:-

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथा शक्ति न हापयेत्॥

वेदादि सत्य शास्त्रों का पठन पाठन; अग्निहोत्र से अश्वमेध यज्ञ पर्यन्त होम; वृद्धों तथा विद्वानों का तर्पण; गौ, कुत्ता, बिल्ली, कीट आदि को बलि दान; अतिथियों की हार्दिक सेवा; इन पांच प्रकार के यज्ञों पर हमारे पूर्वजों ने जो बल दिया है, वह सब पठित आर्य्यों को ज्ञात है। इस पुस्तक में सब प्रकार के अन्य यज्ञों को छोड़ कर केवल अग्निहोत्र की व्याख्या की गई है, क्योंकि यह इस समय सब से अधिक प्रचलित यज्ञ है और लाभदायक भी माना जाता है,

परंतु लोगों को इस का महत्त्व ज्ञात नहीं। इस कारण कई लोग इस यज्ञ को सर्वथा त्याग बैठे हैं और अन्य मन से इस को नहीं करते। बहुत से सज्जनों की कठनाई दूर करने और सब के हृदयों में अग्निहोत्र विषयक श्रद्धा जमाने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। यदि किञ्चिन्मात्र भी उस उद्देश्य की पूर्ति हो जावे, तो यही बहुसुफलता समझी जावेगी।

अग्निहोत्र के लाभ।

इस यज्ञ के लाभ स्वाभाविकतया दो समूहों में विभक्त हो सक्ते हैं।

आध्यात्मिक

(क) अग्नि के गुणों को धारण करना।

(ख) सत्व संशुद्धि

(ग) जातीय उन्नति

(घ) वेद रक्षा

अधिभौतिक

(क) जल वायु शुद्धि

(ख) वनस्पति वृद्धि
(ग) शारीरिक आरोग्यता
(घ) वर्षा वृद्धि

उपरोक्त फलों की व्याख्या क्रमवार की जाती है। उसे ध्यान पूर्वक पढ़ते हुवे अग्निहोत्र की महिमा देखिये।

१-(क) अग्नि के गुणों को धारण करना:—

इस लाभ को हम सर्वोत्कृष्ट समझते हैं, अतः इसे प्रथम रक्खा है। सर्व नर नारी जानते हैं कि अग्नि का स्वभाव अन्य वस्तुओं को भस्म कर देना है और वह वस्तुएं जब प्रकाश में हमें आनंदित करती हैं, उसी समय, मानो कि विना दुःख के, अपना नाश कर रही होती हैं। प्रतिदिन, दोनों काल, जब कि हमारे मन संसार के कार्यों से पृथक् होते हैं अर्थात् जब सत्य वृत्तियां प्रबल होकर सत्य ग्रहणार्थ उद्यत होती हैं, ऐसी उत्तम आत्म-त्यागिता के दृश्य देख कर हम उच्च हुवे विना नहीं रह सक्ते।

प्रथम सत्य शिक्षा यह है कि हम ने नाश होना है और इसी अग्नि ने हमारा शरीर भस्मांत करना है। इसी कारण ही अग्नि को वैश्वानर (भस्म करने वाली) यविष्ठ्य (पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाली) नामों से हम याद करते हैं, अतः जीवन के थोड़े से दिनों में जो शुभ कर्म हम से हो सक्ते हैं उन में विलम्ब तथा असावधानी न करें। नीचे लिखे उत्तम श्लोक की शिक्षा प्रतिदिन प्राप्त करते हैं।

अजरामरवत् प्राज्ञः विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

मिश्र देश के पुरातन आर्य्य लोग इस बात पर बड़ा ध्यान देते थे। जब कभी वह भोग सभायें किया करते थे, अवश्यमेव मेज़ पर मृतक शरीर धारण करने वाली संदूक की प्रतिमा रखते थे, ताकि मृत्यु को न भूल कर वह व्यर्थ समय न गवांये, और बुरे कर्मों व बुरे शब्दों में लिप्त न हों। वह मिश्री आर्य्य तो सत् शिक्षा की प्राप्ति के लिये मृत्यु को कभी याद

करते थे, परन्तु हम प्रत्येक दिन दो वार यज्ञ करके अग्नि रूपी यमराज को सर्वदा देखते हैं । अहो ! क्या उत्तम तरीका हमारे पूर्वजों ने नर नारी को सदाचारी, ब्रह्मचारी, धर्माचारी बनाने का निकाला था। परंतु हम, इस उत्तम शिक्षा को भूलकर रसातल में पड़े हैं, और दुःखित हो रहे हैं। धन्य हैं वह महात्मा ! धन्य हैं वह ऋषि महर्षि !! परमर्षिभ्यो नमः !! परमर्षिभ्यो नमः !!

दूसरी सत्य शिक्षा यह है, कि जैसे स्वयं नाश होकर ही वस्तुवें प्रकाश दे सक्ती हैं, वैसे ही हम किसी प्राणी को सुख, आनंद, या विद्या नहीं दे सके, जब तक कि हम स्वयं लकड़ी व बत्ती की न्याईं न जलें वा बीज के समान न गल जावें। इस प्रकार के सर्वोत्तम आत्मत्याग–नहीं २ सर्वत्याग की शिक्षा जो मनुष्य सर्वदा प्राप्त करता है, वह स्वर्गधाम को शीघ्र ही प्राप्त कर सक्ता है। हम तो पुरातन व आधुनिक जातियों में से किसी के इतिहास में ऐसी उत्तम विधि आत्मत्याग सिखाने की नहीं देखते। भारतीय

आर्य्य आश्चर्य्य किया करते हैं कि जापानादि देशों के निवासी धर्म तथा देश के लिये जीवन कैसे आनंद से त्याग करते होंगे ? हमारे पूर्वजों ने भी अपनी संतान को सर्वथा सुशिक्षित करने के लिये कई विधियां निकाली थीं, परंतु हम ही कुपुत्र होकर उनकी शिक्षा से मुख मोड़े हुए हैं। आवो ! हम सावधान हो प्रति-दिन सच्चे हृदय से इस सर्व त्याग के भाव को संचय करके मुक्ति के भागी हों। ऐसा करते हुए

प्रथम स्वार्थ, फिर परमार्थ

का तंग मसला भी भूल जावेंगे और 'यथावात्मापर स्तद्वत् गृहीतव्यः शुभमिच्छता' अपनी भलाई की इच्छा करने वाला मनुष्य अन्य पुरुष को ऐसे जाने जैसे वह अपने आपको समझता है। जैसे अग्नि व आदित्य मलीन तथा अमलीन वस्तुओं के छूने से स्वयम् मलीन नहीं हो जाते, परंच सब मलीनता दूर कर देते हैं, वैसे हम आर्य्य, अनार्य्यों के दोषों को दूर करने के इच्छुक होंगे। अहंकार से अन्य से घृणा, या

उस का आयकाट न करेंगे और आदित्य के समान सब पर विद्या धर्म का प्रकाश करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे।

तीसरा उत्तम भाव यह है कि प्रकाश सर्वदा सत्य के प्रचार करने वाला होता है, क्योंकि जैसी वस्तु हो उस को वैसा ही देखना व कथन करना सत्य कहलाता है। अतः सत्य के प्रचार का साधन प्रकाश ही है। इस प्रकाश को देखते हुए हम सत्य विचारी, सत्यवादी, सत्यकर्मी होने की उत्कण्ठा करें।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम्॥

सत्य का प्रचार भी हमें निर्भयता से करना चाहिये, क्योंकि अग्नि निर्भय होकर वस्तुओं को जलाती है। अपने इस गुण के दिखाने में किसी का पक्ष नहीं लेती। भूमि निवासी प्राणियों में मनुष्य सर्वोत्कृष्ट जीवधारी है, इस कारण उसे निर्भय तथा पक्ष रहित होकर, जगत् में सत्य फैलाना चाहिये।

सारांश यह कि जैसे अग्नि को वेद भगवान्

पवमान तथा शुचि कहते हैं, वैसे हम उसके गुणों को धारण करने के इच्छुक जन तीनों प्रकार की पवित्रता धारण करने वाले हों, हम में अग्नि जैसी निर्भयता, न्याय शीलता, धर्म परायणता, प्रकाश, तेज, ओज तथा बल होवें, ताकि हम आर्य्य आदित्य के समान संसार का चक्रवर्ती राज्य तथा ऐश्वर्य्य प्राप्त कर सकें।

चौथा भाव यद्यपि पूर्व से सम्बंध रखता है, परंतु आवश्यक होने के कारण उसे पृथक् कर देते हैं। सर्वदा अग्नि की ज्वाला ऊपर जाती है, जलती हुई मोमबत्ती को अधोमुख कर दीजिये, परंतु उसकी सात्विकी पवित्र ज्वाला को नीचे करना हमारी शक्ति में नहीं। इसी प्रकार यदि हम उच्च बनना चाहते हों, तो हम सात्विक स्वभाव के बनें। फिर न ही केवल अग्नि के समान हमारा तेज होगा परंच क्रमशः ऊपर उठते जावेंगे जैसा कि श्री कृष्ण भगवान् ने उत्तमता से कहा है :—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥
यदा सत्वे प्रवृत्ते तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥

इस के अतिरिक्त अग्नि को बहुत से मंत्रों में पथिकृत कहा गया है, क्योंकि वह हमारी त्याग की हुई आहुतियों को भौतिक देवताओं वायु, जल, इंद्र, विद्युत्, तक पहुंचाता है। जैसे अग्नि सामग्री को छिन्न भिन्न कर वायु में मिला देता है, वैसे ही हम सब के साथ मिलकर रहें, बांट कर भोजन करें और ईर्षा, द्वेष, लोभ, मोह, अहंकार को छोड़दें। यदि अग्नि स्वार्थ सिद्धि से अन्य देवताओं को हवि न दे; तो वही उपनिषदों में लिखी प्राण तथा अन्य इंद्रियों की लड़ाई वाला मामला हो, अतः अग्नि का यह गुण वेद भगवान् की तीन उत्तम ऋचायें भी याद दिलाती हैं; जिन के अनुसार हमें अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये।

ओं सहनाववतु, सह नौ भुनक्तु, सहवीर्य्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै ॥
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥
समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

१ (ख) सत्व संशुद्धिः –

अग्नि के कर्मों को देख कर जिस प्रकार सत्व संशुद्धि हो सक्ती है उस का वर्णन पूर्व किया जा चुका है। यहां वेद मंत्रों द्वारा जो मन की मलीनता दूर होती है, उस का संक्षेपतया कथन करना है। होम-विरोधी मनुष्य प्रश्न किया करते हैं कि मंत्रों के पढ़ने की क्या आवश्यकता है, जब वायुशुद्धि के लिये अग्नि-होत्र किया जाता है? अग्निहोत्र के लाभों की गणना से पता लग गया होगा कि उस का वायु जलादि का पवित्र करना ही उद्देश्य नहीं, परंच अन्य बहुत उद्देश्य हैं। विधि पूर्वक यज्ञ करने से अधिकतम लाभ होता है, ऐसा यज्ञ करते हुए जब हम वेद मंत्र पढ़ें,

तो प्रथम "एक पंथ दो काज" के मसले से हम को लाभ होता है।

दूसरा जैसा आगे मन्त्रों के अर्थों से पता लगेगा, उन में सार गर्भित प्रार्थना, उपासना तथा ईशस्तुति भरी हुई है और यह कर्म हम अपने आप को सुधारने के लिये करते हैं। प्रार्थना आदि से जो लाभ होते हैं, अग्निहोत्र करते हुए हम उन के भागी बन सकते हैं। तीसरा—सर्व पाठक जानते हैं कि जब हम संध्या के लिये, आंखें मीचते हैं उसी समय सहस्र प्रकार के दृश्य हमारे आन्तरीय चक्षु के सामने नाचने लगते हैं। हम सर्वथा उन से मन हटाने का यत्न करते हैं, परन्तु बहुत काल तक कामयाबी नहीं होती। क्या हम में से बहुपक्ष ऐसे पुरुषों का नहीं, जिन्हों ने संध्या करनी इस नाकामयाबी के कारण मायूस होकर त्यागदी हो? महाशयो! साधारण मनुष्य में अपने मन की चंचलता को रोकने की शक्ति नहीं पायी जाती, अतः संध्या उस को सुफल नहीं हो सकती। वेद मंत्रों को

बल से उच्चारण करते हुए उनका मन थोड़ा बहुत अवश्य लग जाता है और अग्निहोत्र में इस विधि से और भी अधिक मन लगता है। अतः यदि विचार पूर्वक धीरे २ मन्त्र उच्चारण किये जावें, तो प्रार्थना, उपासना, और स्तुति से जो मन की शुद्धि होती है, वह यहां पर भी उपलब्ध हो सकी है।

चौथा वेद मन्त्रों का विचार तथा प्रेम से पढ़ते हुए उन के एक २ शब्द का महत्व प्रतीत होता है, क्योंकि कणाद मुनि तथा अन्य ऋषियों के वचनानुसार।

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।

वेद मे वाक्य की कृति नाम रचना बुद्धि पूर्वक होती है। शब्दों के सुन्दर क्रम तथा उत्तम भावों को जान प्रेम बढ़ता जावेगा और वेद स्वाध्याय की ओर मन आकर्षित होगा। अतः जो ब्रह्मयज्ञ है उस की भी पूर्ति होम द्वारा हो सकता है। इस समय की पतित आर्य्यसंतान वेद स्वाध्याय की ओर ध्यान नहीं देती

और जिन जातियां को यह पतित, पापिष्ठ और ग़लतियें की शिकार मानती हे, वह बराबर प्रतिदिन बालक, स्त्री, पुरुष प्रातः काल क़ुरान पढ़ते हैं। कौनसा हिन्दूबालक गीता जैसी सरल पुस्तक पढ़ता है? सज्जन पाठक! अग्निहोत्र करते हुए वेद की प्रतिष्ठा अपने हृदय में बिठाओ और महर्षि दयनान्द को वेद-भाष्य का प्रतिदिन कुछ काल के लिये, अनुशीलन करो।

१. (ग) जातीय उन्नति।

प्रत्येक बालक भी जानता है कि तालाब में कंकर फेंका जावे, तो छोटी २ लहरें उत्पन्न होंगी; परन्तु यदि भारी पत्थर बड़े बल से फेंका जावे, तो सारे तालाब में, एक सिरे से दूसरे सिरे तक, लहरें फैल जाती हैं। इसी प्रकार जो शब्द हम मुख से निकालते हैं, वह पत्थरों व कंकरों के समान छोटी बड़ी लहरें वायुमंडल में उत्पन्न करते हैं और वह लहरें बहुत दूर तक पहुंचती हैं। वस्तुतः हमारे पास अभी तक उस बात को मालूम करने के

साधन नहीं हैं, परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि शब्द सारे वायुमंडल में फैल जाते हैं और अपनी सत्ता का चिन्ह वहां छोड़ जाते हैं। हमारा विश्वास है कि यदि कोई योगीराज इन लहरों को देख कर उस के नियमों को जानता हुआ चाहे, तो वह निःसंदेह उन शब्दों को कह सकेगा, जिन से यह लहरें उत्पन्न हुई थीं। यह विचार निराला प्रतीत होता है, परंतु तीन चार मोटे दृष्टांतों से, इस की सत्यता प्रतीत हो जावेगी।

स्टेशन पर बैठा हुआ तार बाबू छोटा सा टिक टिक का शब्द करता है और वह भारतवर्ष के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सुनाई देता है। यह तो तार द्वारा हुआ, परंतु विना सम्बंध की तार में भी यही नियम है। वह छोटा सा टिक टिक का शब्द इस वायुमण्डल में घूम रहा है, जिस की जहां इच्छा हो वहां पकड़ ले। अमेरिका से इङ्गलैंड में, इङ्गलैंड से भारतवर्ष में, कलकत्ते से शिमले में भी सुनाई देगा।

इस से सिद्ध होता है कि यह छोटा सा शब्द निरर्थक नहीं जाता, मुख से निकला शब्द अपनी सत्ता नहीं खो बैठता, परंतु सारे वायुमण्डल का जो इस ओर तथा पाताल में रहता है अर्थात् २५००० मील का खूब वेग से वह चक्कर लगाता है। जब यह छोटा सा टिक का शब्द इतना बलवान् हो, तो क्या अग्निहोत्र में ज़ोर से बोला शब्द इस से २० गुणा दूरी पर नहीं जावेगा? और जब क्रोड़ों मनुष्य मिल कर एक साथ एक समय हवन करें, तो कितना दूर और गहरा यह शब्द जावेगा, उसे विचार में तो लाइये?

महाशय! जहां शब्दों के सुनने का प्रबंध हो, वहीं शब्द सुने जा सक्ते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि एक योगी एकांत में बैठा हुआ इच्छानुसार अपने हृदय में गान सुन सक्ता हो। सजातियों के मन एक हों, जैसे पिता पुत्र, पति पत्नी, भाई बहन के तो हृदयों पर असर हो सक्ता है। कौन ऐसा मनुष्य होगा, जिस ने अपने जीवन में कभी न कभी अपने प्यारे

के दुखी व मृत होने की सूचना पत्र आने से पूर्व ही अपने हृदय में प्राप्त न करली हो ? समय आता है जब स्वयं शरीर कांपने लगता है, मुख मुर्झा जाता है, मन उदासीन हो जाता है और इन सब बातों का कारण प्रतीत नहीं होता, परंतु दिन दो दिन के पश्चात पता लगता है कि अमुक प्यारा संसार से चल बसा। ऐसी बातों को विज्ञान (साइन्स) द्वारा हम स्पष्ट न कर सकें, परंतु एक बात स्पष्ट है, कि हृदयों का परस्पर सम्बंध है और हमें विश्वास है कि यह सम्बंध वायुमण्डल द्वारा ही है। दुखी की आह और सम्बंधी को याद करने के शब्द निकले हुये दूरस्थ सम्बंधी के हृदय में प्राण द्वारा जाते हैं, और एक मन होने से उस पर असर डालते हैं, जैसे विना सम्बंध की तार में, विशेष प्रबंध से टिक का शब्द पकड़ा जाता है। वेद भगवान् की जो आज्ञा थी:—

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम् ।

इस प्रार्थना के एक साथ क्रोड़ों मुखों से निकलने का महत्व और आवश्यकता अब पाठकों को पूर्णतया ज्ञात हो सक्ते हैं। यदि सजातियों से सहानुभूति रखने वाले समान मन वाले हों, तो एक ही समय अग्निहोत्र करते हुवे, जो प्रार्थनायें की जावेंगी, वह वायुमण्डल द्वारा क्रोड़ों के मनों पर असर डालेंगी, जितना अधिक प्रेम और सत्यता उन शब्दों में मिली होगी-उतना अधिक असर दूसरों के हृदयों पर होगा। जब सारे देश निवासी देश उन्नति के लिये एक साथ इच्छुक होंगे, तो क्यों न शीघ्र उसे प्रार्थना द्वारा प्राप्त कर सकेंगे?

शब्द के असर पूर्णतया समझने चाहियें। नाटकों में कैसा बुरा भला प्रभाव इन शब्दों से आचार पर पड़ता है, एवम् गान का प्रभाव सब मनुष्य जानते हैं और अच्छे वक्ताओं ने इस संसार में जो जो क्रांतियें उत्पन्न की हैं, उन का इतिहास साक्षी है। अतः क्या अग्निहोत्र में सच्चे दिल और मधुरवाणी से निकले हुवे क्रोड़ों के शब्द प्रभाव से रहित

होंगे ? नहीं, सर्वथा नहीं ! स्पष्ट देखते हैं कि अन्य जातियां एक समय तथा मिल कर संध्या करके उन्नति कर गई हैं और कर रही हैं, परन्तु उत्तम शिक्षाओं के देने वाले ऋषियों की सन्तान सब से अधिक गिर गई है। हा शोक ! सारे संसार को सिखा कर स्वयम् बुद्धू बन बैठी है। सज्जनो उठो ! शब्द का महत्व समझो, एक समय सब मिलकर प्रार्थना करो, वह सुफल होगी। सारे जगत् को अपने धर्म्म-पथ पर लावो और अपने पूर्वजों के योग्यपुत्र बनो।

१ (घ) वेदरक्षा।

पाठकों ने समझ लिया होगा कि उपरोक्त लाभ तभी हो सक्ता है, जब सब हवन करने वाले एक समय पर एक विधि से यज्ञ करें और समान मन्त्र बोलें। इस कारण ही एक से संध्या मंत्र रक्खे गये हैं। कुछ महाशय विचार किया करते हैं कि जिस भाषा, जिस समय तथा जिन शब्दों में इच्छा हुई, प्रार्थना उपासना

कर लो, परंतु ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उस से इन सब विचारों का निषेध होता है । यदि हम अपनी तथा जातीय उन्नति चाहते हों, तो एक समय एक ही भाषा में प्रार्थना करें । वेद हमारी ईश्वरीय पुस्तकें हैं, उन का पाठ करना परम धर्म्म है । अग्निहोत्र में वेद मंत्रों का पाठ होता है, बाकी मंत्रों के लिये उत्साह बढ़ता है और कई नियत् आहुतियों के अतिरिक्त अन्य मंत्रों से हवि डाल कर मंत्र याद रक्खे जा सक्ते हैं । ब्राह्मणों ने यज्ञों में मंत्रों को उच्चारण करने के उद्देश्य से ही वेद याद कर लिये और इस विधि से मनुष्यजाति के शत्रु पुस्तकालयों को भस्म करने वाले मुसल्मान विजेताओं से उन की रक्षा की। यदि यज्ञों का तरीक़ा न होता तो संदेह है, कि अब तक मनुष्यों को वेद प्राप्त हो सक्ते ?

आधिभौतिक लाभ

(क) जल वायु शुद्धि ।

'नीम हकीम खतरा जान' यह कहावत प्रसिद्ध है, परंतु थोड़ीसी पदार्थविद्या पढ़ कर सारी प्रकृति के विषय में ज्ञान रखने के दावे मूर्ख जन बांधते हैं। मादे और शक्ति के अविनाशी होने के नियम को जान कर वह समझते हैं, कि इस संसार में ईश्वर की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार रसायण किञ्चिन्मात्र पढ़ कर विद्यार्थी का यह ख़याल जम जाता है, कि जो सिद्धांत उसने पढ़े हैं, वह सर्वदा के लिये ठीक हैं और उन सिद्धांतों के विरुद्ध कहने वाले अज्ञानी हैं; परंतु वह भूल जाता है कि आज के सिद्धांत कल असत्य हो सक्ते हैं और यह कि विख्यात साइंसवेत्ता इस बात को स्वीकार करते हैं कि जहां तक हमारा ज्ञान है, उस के अनुसार अमुक घटना अशुद्ध है, परंतु सम्भव हो सक्ता है कि ठीक हो।

वैसे ही अग्निहोत्र के विषय में सब लोग आर्य्यों पर टूट २ पड़ते थे कि वह अपना समय तथा धन ही होम करके व्यर्थ नहीं खोते, परञ्च कार्बन डायी आक्साइड (CO_2.)उत्पन्न कर अपने तथा जातीय स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं। परंतु उन को अपने ऋषियों की अपूर्व बुद्धि पर विश्वास था और यद्यपि उस समय की साइंस उन का साथ नहीं करती थी, वह अग्निहोत्रसे नहीं टले। आज बड़े हर्ष की बात है कि पश्चिमी विद्वानों ने अग्निहोत्र के विषय पर प्रकाश डाला है और हम निर्भयता से इस तर्क प्रधान, साइंस परायण और विश्वास विदारक समय का मुकाबिला कर सक्ते हैं और वर्त्तमान लोगों को अपने ऋषियों की बज़ुर्गी का एक नया नमूना दे सक्ते हैं।

साइंस द्वारा होम के लाभ देखने से पूर्व उन वस्तुओं के नाम जानने चाहियें, जो हवि के तौर पर अग्नि में डालनी चाहियें।

(क) निम्न प्रकार की लकड़ी जलाने की आज्ञा है:— पलाश, शमी, पीपल, आम्र, बड़, गूलर, शिल्व, आदि ।

(ख) होम के सुगंधित द्रव्य :—कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चंदन, इलायची, जायफल, जावित्री, काफ़ूर, धूप ।

(ग) पुष्टिदायक पदार्थ:—घी, दूध, फल, कंद, अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि ।

(घ) मिष्ट पदार्थ: शक्कर, शहत, छुहारे, दाख, पिस्ता, गरी, बादाम, आदि ।

(ङ) रोगनाशक पदार्थ: गिलो, नीम, नेत्रबेल, बालछड़ आदि औषधियां ।

जल वायु शुद्धि जिस प्रकार अग्निहोत्र से हो सक्ती है, उस का वर्णन अब किया जाता है ।

पदार्थविद्या से सिद्ध हुआ है कि जो कृमि हमारे शरीर को रोगग्रस्त करने की शक्ति रखते हैं, उन्हें धूवां नाश कर देता है । प्रसिद्ध फ्रांसीसी

रसायनवेत्ता ने इस बात को देख कर कि सब जातियों में रोगों को दूर करने का मोटा तरीका लकड़ी जलाना है, उस में साइंस द्वारा सत्य देखने का निश्चय किया और महाशय त्रिले ने मालूम किया कि लकड़ी जलाने से फ़ार्मिक आलडीहाइड नामी एक गैस निकलती है, जिस का गुण सर्व प्रकार के (जर्मज़) कृमियों को मार डालना है। यह वस्तु रसायन में बहुत प्रसिद्ध है, जल के सौ परिमाणों में ४० परिमाण इस वायु के मिलाकर फ़ार्मेलिन नामी औषधि बाज़ार में शीशियां भरी हुई बेची जाती हैं और क्योंकि यह कृमिनाशक, रोगनाशक, विकारबाधक है, इस कारण उस का बहुत प्रयोग होता है; जैसे फ़िनाइल बर्ता जाता है, वैसे ही मकान शुद्ध करने के लिये, इस का प्रयोग किया जाता है।

हवन करने में जो लकड़ी जलाई जाती है, उस से जल वायु शुद्ध हो सक्ते हैं, परन्तु लकड़ी थोड़ी होने से पर्याप्त उद्देश्य सिद्धि न हो सके, उस को पूर्ण करने के

लिये, जो अन्य पदार्थ डाले जाते है उन का असर देखना चाहिये।

मिष्ट पदार्थों का असर म० त्रिलै ने मालूम किया है कि खाण्ड जलाने मे फार्मिक आलडी हाइड निकलती है। रसायन में खाण्ड तीन प्रकार की कहते हैं:- गन्ने की खाण्ड, फलों की खाण्ड और ग्लूकोज नामी अंगूरी खाण्ड। मिष्ट पदार्थों की सूचि देखने से पता लग जावेगा कि यह तीन खाण्ड हम हवन में जलाते हैं अब उन मे काफ़ी जमंज़, कृमियों को मारने वाली वायु निकलेगी। साथ ही कार्बन डाया आक्साइड भी पैदा होगी उस का लाभ आगे चल कर बताते है। घी दूध आदि पुष्टिदायक पदार्थों में भी खाण्ड होती है और उन के जलने मे भी वह कृमिनाशक वायु उत्पन्न होगी। अभिप्राय यह है कि कई प्रकार से हवन करते समय हम जीवनाशक वायु पैदा करते हैं और क्योंकि आज कल सब रोगों का आरम्भ तथा वृद्धि इन कृमियों से होती है, इस कारण होम का जल वायुशुद्धि में बड़ा भारी असर है।

प्रश्नः—फार्मेलिन बाज़ार से लेकर आवश्यकता अनुसार घरों में छिड़क दी, होम में बहुत धन गंवाने की क्या जरूरत है ?

उत्तरः फ़िनाइल की न्याईं वह बदबूदार होती है, इस कारण जो कृमिनाशक वायु हवन की सुगंधियों से निकलती है इस का मुकाबिला नहीं कर सक्ती। अतः यदि हवन पर अधिक धन व्यय हो, तो भी परवाह नहीं करनी चाहिये। दूसरा, फार्मेलिन साधारण-ताप पर इतना लाभ नहीं पहुंचा सक्ती, जितना विरल रूप में होम से निकली हुई तप्त कृमिनाशक वायु कर सक्ती है। अतः फार्मेलिन कुछ मुकाबिला नहीं कर सक्ती। होम ही जल वायु शुद्धि में एक अमूल्य विधि है।

प्रश्न.—क्या हमारे पूर्वज भी हवन को रोगनाशक मानते थे ?

उत्तरः—सारे पुरातन आर्य्य ग्रंथ अग्निहोत्र को रोगनाशक कृमियों को मारनेवाला कहते हैं। स्थान

के अभाव से महाभारत तथा शतपथ मे ही प्रमाण देते हैं। शतपथ ब्राह्मण (१, १, ४, १४ १८) में लिखा है कि किलात और आकुली, अतिसार और विशेष सूजन के रोग आर्य्यों को दुःख देते रहते थे, इन के नाश करने के लिये ऋषभ नामी औषधि मे कामयाबी न हुई। आर्य्यों को इस कारण क्लेश था। बहुत अन्वेषण के पश्चात् उन रोगों को यज्ञ मे नाश करने की विधि सूझी और वह कामयाब हुए। यहां पर दो रोग असुर कहे गये हैं और एक स्थान पर लिखा है कि असुर तथा राक्षस यज्ञ मे भयभीत होते थे, क्योंकि वह उन कृमियों के मारने वाला होता था।

" असुर रक्षस्मानि ररक्षुर्न यक्ष्यध्व इति तद्यद्-रक्षस्तस्माद्रक्षाँसि "

अलंकार मे कहा है कि असुर राक्षस (कृमियों) ने क्योंकि यह कह कर यज्ञ बन्द करना चाहा कि यज्ञ न करो, इस कारण उन को राक्षस कहते हैं। यह पौराणिक राक्षस नहीं, क्योंकि चावलों के छिलकों को असुर राक्षस, मृ-

गर्भकर्म, उखली मुसल, चक्की के पत्थर, यज्ञ के पात्र आदि में राक्षसों का अधिक वास बताया है और सब से बढ़कर उन राक्षसों को भूमि निवासी भयानक रूप मानुषीय आकार वाला नहीं कहा, परन्तु यह कि:—

रक्षश्चरत्यमूलमुभयतः परिच्छिन्नम ॥

वायु मण्डल में राक्षस सब ओर अमूल विना ठिकाने और विना बध कैद के सर्वत्र रहते हैं। उपरोक्त कारणों से यही विचार होता है कि असुर और राक्षसों को मारने के लिये, देव विद्वान लोग यज्ञ किया करते थे। इसी बात की पुष्टि महाभारत मे मिलती है।

हव्यं कव्यञ्च विविधं निष्पन्नं हुतमेव च।
अदंशं मशकादेशा नष्टव्याल मगासृपाः

द्रोण पर्व ५९,१६,

भिन्न प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति के लिये हवि डाली जाती है। देश को भिड़, मच्छर आदि से रहित किया जावे और खूंखार पशुओं तथा रींगने वाले, सांप बिच्छू आदि को यज्ञ के धूवें से नाश किया जावे।

२ (ख) वनस्पति वृद्धि ।

बहुत से लोगों ने कार्बन डाया आक्साइड को दम घुंटने वाली वायु माना हुआ है, वह भूल जाते हैं, कि सोडा लैमुनेट में इसी वायु को जल में घुला हुआ पीते हैं, जिस से प्यास बुझती और भोजन पचता है। इस में संदेह नहीं कि यह वायु सीधी पेट में जाती है, हमारे फेफड़ों पर प्रभाव नहीं डालती। हवन से निकली हुई कार्बन डा० वायु प्राण द्वारा फेफड़ों पर असर कर सकती है, परंतु उस का बुरा असर दो कारणों से नहीं पड़ता। जलती हुई अग्नि से जब यह वायु निकलता है, यद्यपि भारी होने से नीचे बैठना चाहता है, परंतु गरम होने के कारण अति विरल होने से कुछ ऊपर चढ़ जावेगा। जो वायु हम श्वास में लेते हैं उस में उस की मात्रा अधिक होकर हानी नहीं पहुंचाती। दूसरा, जो कार्बन डा० भूमि के पास कुण्ड के आस पास रह जावे, उसे जल चूस लेता हो, यह सम्भव है।

होम से निकली हुई कार्बन डायी आक्साइड के विशेष लाभ अन्नादि का अधिक उत्पन्न करना है-साइंस द्वारा यह बात ऐसे सिद्ध होती है।

पदार्थविद्या से पता लगता है कि कतिपय पदार्थों में से प्रकाश गुज़र सक्ता है, परंतु घर्म नहीं गुज़र सक्ता। बहुत से बाग़ीचों में घर्म घरों Hot Houses को पाठकों ने देखा होगा, उन में ऐसे पौदे लगाये जाते हैं जिन्हें अधिक गर्मी चाहिये। अब शीशा सूर्य्य की किरणें अपने में से गुज़रने देता है, परंतु अन्दर के घर्म को बाहिर घर से नहीं गुज़रने देता इस कारण शीशमहलों में गर्मी अधिक रहती है। मालूम किया गया है कि कार्बनडा० भी शीशे जैसा पदार्थ इस विषय में है। उस में सूर्य्य की रश्मियां गुज़र आती हैं परंतु भूमि से टकरा कर बाहिर नहीं जा सक्तीं, वायुमण्डल के १००० परिमाण में ३ परिमाण कार्बन डा० है इस का फैलाव भूमि पर एक प्रकार का पर्दा बना देता है क्यों कि यह साधारण वायु से डेढ़ गुना भारी है,

भूमि तथा इस पर्दे के मध्य घर्म कैद रहता है-ज्यूं २ वह पर्दा अधिक मोटा होगा त्यों २ थोड़ा घर्म निकल कर वायुमण्डल में बिखर जावेगा। आक्सीजन तथा नाइट्रोजन में उपरोक्त प्रकार से घर्म को रोकने की शक्ति नहीं, इस कारण यदि कार्बन डाया आक्साइड वायुमण्डल में थोड़ी हो जावे, तो घर्म निकल कर इतनी सर्दी पड़ने लगेगी कि यह भूमि किसी जीव को धारण नहीं कर सकेगी। भूगर्भविद्या की एक प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है कि घर्म ज़ब्त करने का गुण धारण करने के कारण कार्बन डाया आक्साइड वायु पर बड़ा प्रभाव डालती है। उसकी मात्रा में किञ्चिन्मात्र भी भेद आने से बड़े२ परिवर्तन हो जावेंगे। यदि आधुनिक मात्रा को केवल दुगना कर दिया जावे अर्थात् १००० परिमाण में ३ के स्थान पर ६ परिमाण कार्बन वायु के कर दिये जावें, तो भूमि की सब बर्फ़ पिघल कर ध्रूवों में मोतदिल आबोहवा हो जावे और यदि मात्रा

आधी करदी जावे, तो सारी भूमि पर फिर से हिम ही हिम छा जावे ।

इसी प्रकार प्रसिद्ध रसायन शास्त्रकर्त्ता मेण्डालीफ़ लिखता है : "वायु में कार्बन डा० की मात्रा पर भूमि का ताप आधार रखता है । भिन्न २ कालों में ताप की भिन्नता का प्रधान कारण कार्बनवायु की मात्रा की भिन्नता थी" ।

पाठकों को अब पता लग गया होगा, कि यदि कहीं बनावटी तौर से कार्बन गैस उत्पन्न कर वायुमण्डल मे छोड़ी जावे, तो वहा की गर्मी बढ़ जावेगी । परन्तु यह सिद्धान्त है कि जहा अधिक गर्मी होगी यदि वहा जल हो, तो वनस्पति की अत्यंत बहुतायत होगी । हवन से कार्बन गैस पैदा कर हम घर्म्म बढ़ाते हैं और उस से फल, अन्नादि पदार्थों की उत्पत्ति अधिक करते हैं ।

कार्बनगैस के कारण वनस्पति की अधिकता के उदाहरण:—

जहां २ कार्बन डायौ आक्साइड अधिक स्वाभाविक तौर पर निकलती है, वहां २ वनस्पति अधिक देखी गई है। ज्वालामुखी पर्वतों से यह वायु निकलती है, उन के आस पास वृक्ष तथा वनस्पति बहुत होते हैं। फ्रांस में एक स्थान गृवर्गेन है जहां कार्बन गैस निकालने वाला एक चश्मा है, वहां देखा गया है कि अत्यंत वृक्षादि पाए जाते हैं। इसी प्रकार भूमि के इस रूप में आने से पूर्व जो कार्बन काल था, जिस में कार्बन गैस अधिक थी, उस समय जैसी वनस्पति थी अब तक फिर कभी नहीं हुई। उपरोक्त उदाहरणों से सिद्ध हुआ कि कार्बन गैस से वनस्पति अन्नादि बढ़ते हैं। महाशय पूर्णतया विचार लेना चाहिये कि पदार्थविद्या द्वारा हमारे ऋषियों के कथन पूरे हो रहे हैं। वह हवन का एक उद्देश्य अन्नों का बढ़ाना समझते थे और वही हम ने साइंस द्वारा सच्चा देखा है, परंतु शोक है कि जब तक हम अपने पश्चिमी गुरु प्रकाश न दिखावें, हम स्वयम् अपने

ऋषियों के वाक्यों को सच्चा दर्शाने का कोई यत्न नहीं करते।

प्रश्न —हवन से निकली हुई कार्बोनिक गैस और धुआं वायु मण्डल में फैल जायगा, हमारे नगर व देश को क्या लाभ हुआ? अन्य जातियों के लिये, हम अपना धन क्यों गवावें?

उत्तर :—यद्यपि ऐसा विचार करना तुम्हारी तङ्गदिली को प्रकट करता है, परन्तु हमारे ही नगर व देश को लाभ अधिक पहुंचेगा, इस में सन्देह नहीं। साधारण वायु से कार्बन गैस डेढ़ गुणा भारी है और यह साधारण ज्ञान की बात है, कि भारी वस्तु ऊपर नहीं जाती, अतः, यह कार्बन गैस वायुमण्डल तक उड़ने से पहले ही, भारी होकर हवनकुण्ड के पास कुछ ऊपर आसपास, इस कारण हमारे श्वास को नहीं बिगाड़ती और वायुमण्डल में न बिखरने से तथा आस पास के वृक्षों में जज़्ब होकर, अपना लाभ पहुंचाती है। अतः यदि लाहौर नगर के निवासी बृहद् हवन करें, तो उन के नगर के ऊपर बहुत काल

तक यह पर्दा रहेगा, जब तक कि विशेष आंधी आकर उस वायु को उड़ा न जावे। अतः हवन किया हुआ तुम्हारे लिये ही सुफल होता है।

२. (ग) शारीरिक आरोग्यता बढ़ती है।

अग्नि जलने तथा कार्बन गैस के निकलने से गर्मी बढ़ जाती है, इस कारण हमारे घरों की गंदी वायु गर्म होने से हल्की होकर बाहिर निकलेगी और उस के स्थान पर शुद्ध वायु आवेगी। यह उद्देश्य तो केवल लकड़ी जलाने से भी पूर्ण हो सकता है---घरों की सफ़ाई करने के लिये प्रायः डाक्टर कमरों में अग्नि जलवाया करते हैं, ताकि जो जर्म्ज़ साधारण ताप से जीवित रह सकते हैं, वह ताप के बढ़ने पर मर जावें, परन्तु हम हवन में लकड़ी जलाने और गर्मी पैदा करने के अतिरिक्त सुगंधित पदार्थ डालते हैं। वह हवन की आग से जलते नहीं बल्कि उन के अत्यन्त छोटे २ भाग परमाणुरूप में [illegible] हो जाते हैं। वायु द्वारा हमारे घ्राण के साथ

नासिका में से गुज़रते हुवे अंदर पहुंचते हैं। यदि यह सुगंधित पदार्थ सर्वथा जल कर भिन्न २ गैस बन जाते तो दूर २ होम की सुगंधी न आती जैसा कि अब प्रतिदिन हम देखते हैं। केवल इसी तज़रुबे से ही हमें मानना पड़ता है कि सुगंधित पदार्थों को अग्नि सूक्ष्मरूप में कर देती है। यदि यह सिद्धांत ठीक है, तो उन पदार्थों के परमाणु शरीर में जाकर अवश्य रोगों को दूर करने वाले तथा रक्त के साफ़ करने वाले होते हैं। जो औषधि हम खाते व पीते हैं वह प्रथम रस में परिवर्तित होती है, फिर एक लम्बे तरीके से रक्त के साथ मिल कर वहां की मलीनता को दूर करने का साधन होती है। शरीर को रोगी करने का प्रधान कारण रक्त की खराबियाँ हैं, इस सिद्धांत को मानने वाले हमारे पूर्वज थे और इस कारण वह उस रक्त को ही साफ़ करना चाहते थे। वह खूब समझते थे जो कि हम बीसवीं शताब्दी के मग़रूर पुरुष भूल जाते हैं कि:

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।

रोग फूट आने पर जो अकथनीय कष्ट रोगी और उस के सम्बंधियों को होता है वह किसी पाठक से छिपा नहीं, औषधि पीकर रक्त में मिलने का जो दीर्घ तरीका है उसे भी बहुत जानते हैं इन कारणों से हमारे अपार महिमा वाले ऋषियों ने एक बड़ी सुगम विधि निकाली थी जिस से औषधि श्वास द्वारा बिना दुःख परञ्च अत्यंत सुख से शीघ्र रक्त के साथ मिल जावे और प्रातः सायं जो कुछ शरीर की विष रक्त में मिली हो उस को सुगंधित वस्तुओं के परमाणुओं से सर्वथा नाश कर दे। रक्त को जिस तेज़ी से यह परमाणु शुद्ध करते होंगे, उस का अंदाज़ा एक घटना से लग सक्ता है। जब जब कोई रोगी औषधि न पीवे व उस का रोग चिरकाल तक रहने वाला हो गया हो, तो डाक्टर नश्तर द्वारा रक्त में औषधि का तत्व भर देते हैं इस तरीके से शीघ्र असर होकर स्वास्थ्य बढ़ने लगता है।

पाठक गण हमें अपने पूर्वजों पर विश्वास कम है, नहीं तो उन की एक२ बात का अन्वेषण करते हुवे, हम बहुत कुछ सीख सक्ते हैं। स्वयम् ही विचारिये कि क्या उत्तम विधि ऋषियों ने रोगों के नाश करने की निकाली थी न नश्तर लगे, न रक्त बहे, न कड़वी औषधियां पानी पड़ें और न रोगी को बिस्तरे पर करवटें लेनी पड़ें॥

अतः प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करो और मासाहिक बृहद् हवन भी, इन से आप का तथा जाति का भला होगा, शरीरवृद्धि होगी, अन्नादि बढ़ेंगे, धन स्वयं अधिक होगा और शांति का राज्य संसार में फैलेगा।

२. (घ) अग्निहोत्र द्वारा वर्षा करनी

"अन्नाद् जायन्ते मनुष्याः यज्ञात् पर्जन्याः"

अन्न से मनुष्य उत्पन्न होते हैं और यज्ञ से बादल। अब हम यह कहते हैं कि मनुष्य अपनी

शक्ति में वर्षा ला सकता है इस से बहुत से मत-मतान्तर वाले कुछ होंगे। अधार्मिक वैज्ञानिक भी भ्रम पूर्वक चिल्लायेंगे कि यह व्यर्थ दावा है-प्राकृतिक नियमों को मनुष्य नहीं तोड़ सकता, जब उन के अनुसार वर्षा होनी होती है, हो जाती है। किरानी, कुरानियों के बहुत से मोजज़े (चमत्कार) असत्य हो जाते हैं, यदि साधारण मनुष्य की शक्ति में भी वर्षा का लाना हो, पुनः वह दोष लगावेंगे कि परमेश्वर इच्छानुसार वर्षा करता है। ईश्वरीय कार्य्य में तुच्छ मनुष्य क्या दखल दे सकता है।

निःसन्देह नरनारी की अपनी शक्तियों में सिद्धान्त नहीं। विश्वास हो, जो वह बहुत उन्नति कर सके हैं। १९ वीं शताब्दी के स्त्री पुरुषों ने क्या कभी स्वप्न में यह ख़याल किया था कि २० वीं सदी में सहस्रों मील की दूरी पर बिना सम्बंध के संदेसा पहुंच जावेगा? कि मनुष्य वायुमण्डल में पक्षियों की न्याईं उड़ा करेगा और १०० मील प्रति घंटा चलने वाली रेलगाड़ी पर

सवारी किया करेगा ? और ऋतुज्वर, प्लेग, चेचक आदि रोगों को वह दावे से अपने घरों में नहीं आने देगा ? यथेच्छा नहीं नदी समुद्र विद्युत्यानों द्वारा पार करेगा, परञ्च यथेच्छा समुद्र पयोनिधि को सुखा कर भूमि बना लेगा ? और पर्वतों के गर्भों में सुरंगें बना उनको सुगमता से रेल में बैठे पार हो जाया करेगा ? एवम् अन्य सहस्त्र प्रकार के सुखों को निर्भयता से भोगेगा ?

हमारा दावा है कि इस प्रकार की सहस्त्रों बातों का उस को ज्ञान नहीं था और उन घटनाओं को उस समय के लोग असम्भव समझते थे, बल्कि यदि कोई उन के प्रिय विचारों के विरुद्ध कहे, तो जान से मारने को तय्यार थे, जैसा कि गैलिलो और कार्पनी-कस को मारा गया। इसी कारण साइंस और धर्म में भेद चला आया है, यद्यपि यह दोनों प्यारी बहनें हैं। आज कल का तार्किक समय अग्निहोत्र द्वारा वर्षा के काबू करने को असम्भव कह दे, परंतु बहुतसी पुरातन जातियों का विश्वास था कि वह

चंचल मेघों को अपने दास बना सक्ते हैं और यथेच्छा अपनी खेतियों को हरा भरा कर सक्ते हैं। इस उद्देश्य से हमारे ऋषि मुनि कई यज्ञ किया करते थे, अब तक यही बात देखी जाती है कि जब कभी भारतखण्ड के किसी भाग में वर्षा का अभाव हो, तो बड़े २ साधु पण्डित नगरों में धन एकत्रित कर हवन रचाया करते हैं और प्रायः कृत कृत्य भी होते हैं। कुछ मास पूर्व वर्षा का अभाव सबको ज्ञात है और यह भी मालूम होगा कि बहुत से स्थानों में हवन किये गये और प्रायः वर्षा हुई।

जब २०वीं शताब्दी का मनुष्य मौसमों, ताप, आबो हवा को अपनी बुद्धि द्वारा बदल सक्ता हो; जब मंगलग्रह निवासियों के साथ बात चीत करने पर तत्पर हो; जब वह विद्युत् के प्रभाव को घरों पर से हटा सक्ता हो, तो क्या प्रकृति का मालिक होते हुवे इस में यह शक्ति नहीं कि मेघों की चंचलता और अनियमता को रोक, उन्हें सुखकारक दास ब-

नाते ? महाशयो विश्वास रखो कि वह ऐसा अव-
श्य कर सक्ता है । एक महात्मा का यह विश्वास है कि
मनुष्य पृथ्वी को हिम पिगला, उन को सुखमय निवास
स्थान निस्संदेह बना सकेगा । ऐसा ही ... इन्हीं
साहब का यह मत है कि परमात्मा ने उन पदार्थों को
इस संसार में पूर्ण बनाया है, जिन पर मनुष्य को आक्र द-
खल नहीं दे सक्ता जैसे लोक लोकांतर, परन्तु वह पदार्थ
अपूर्ण हैं जिन्हे मनुष्य ने अपनी बुद्धि द्वारा पूर्ण करना
है । अतः निस्सन्देह वर्षा को भी नियमता को भी हम
ने पूर्ण करना है । वेदभगवान यज्ञ को वर्षवृद्धा,
मधुजिह्वा और पर्जन्य जनक कहते हैं, तो क्या वेद
असत्य कह रहे हैं? नहीं महाशय कूप मण्डूक की न्यांई
हमने अपनी बुद्धियों को परिमित किया हुआ है,
विश्वास के स्थान पर संशय हृदय में जमाए हुवे हैं,
इस कारण हम मेघों के दास बनाने को असम्भव सम-
झते हैं, याद रखो : —

संशयात्मा विनश्यति

संशय करने वाला मनुष्य तथा जाति नाश होती है। अतः उठो, जागो और महात्मा पूर्वजों का अनुकरण करो, इसी से कल्याण, सुख, आनन्द की वर्षा होगी।

इस उद्देश्य की पूर्त्ति कई विधियों से हो सक्ती होगी, परन्तु हमारे पूर्वजों ने जितनी विधियां मालूम की थी, उन में से दो का वर्णन हम यहां संक्षेप से करते हैं।

(1) विद्युत् द्वारा वर्षा लाना। युद्धक्षेत्र में कई प्रकार के भीषण अस्त्र शस्त्र आर्यों के पास होते थे। उन में से वायवी, आग्नेय तथा वारुणेय अस्त्रों शस्त्रों का नाम सब पठित आर्यों को मालूम है। अग्नि बरसाने वाले शस्त्र के प्रभाव को दूर करने के लिये वारुणेय शस्त्र प्रयुक्त किया जाता था। वर्षा बनने के सिद्धान्त जो Encyclopedia Britanica नामी बृहत् कोश में दिये हैं; उन में से एक यह भी है कि जब अकस्मात् अत्यंत वृहद धक्का हवा को पहुंचे, तो वाष्प एकत्र होने से भारी होकर वर्षा होसकती है।

साथ ही विद्युत् द्वारा वर्षा की जाती थी; उसका मर्म हमारे पाठकों को श्री प्रो० म० च० सिंहा के "विद्युत् शास्त्र" से पता लग जावेगा। अभिप्राय यह है कि मनुष्य के लिये वर्षा का काबू करना कठिन व असम्भव काम नहीं है।

(II) अग्निहोत्र द्वारा वर्षा लाना--दूसरी विधि वर्षा लाने की बृहद् हवनों द्वारा थी। यद्यपि पदार्थ-विद्या बड़ी उन्नति कर चुकी है, परन्तु वर्षा के बनने के विषय में कोई पक्की सम्मति नहीं देसकी। यह शब्द पाठकों को आश्चर्यदायक प्रतीत होंगे, परन्तु यह पूर्ण तथा सत्य हैं, अतः हवन करने से किस प्रकार वर्षा हो सकती है उन कारणों को यदि पूरे तौर पर वर्णन न कर सकें, तो हमारे पूर्वजों की विधि में असत्यता नहीं आती, केवल हमें स्वयम् अज्ञानी मानना चाहिये। इस विषय पर तीन सिद्धान्त प्रकाश डालते हैं, जिनको सरल भाषा में बयान किया जाता है।

(क) ताप भिन्नता से वर्षा हो सकती है।

सिद्धान्त यह है कि जब आकाश में भिन्न ताप के दो वायुदल परस्पर मिलें, जिन में अपने २ ताप अनुसार वाष्प (धुखारात) सर्वथा परिपूर्ण हो। अर्थात् उस ताप पर अधिक वाष्प वह वायु न जज़ब कर सके, तो मिलने से उन दो वायुदलों का ताप समान हो जावेगा; इस पर कुछ वाष्प सम्मिलित वायु में रह नहीं सकेंगे, अतः वह वाष्प वर्षा रूप में भूमि पर गिर पड़ेंगे। इस वर्षा के लाने में यह नियम काम करता है कि "अधिक ताप पर अधिक वाष्प, और कम ताप पर कम वाष्प वायु ग्रहण कर सकती है।" सम्मिलित वायु का ताप कम हो जाने से वाष्पों की मात्रा अधिक होने से वह मेघ रूप हो जावेंगे। अग्निहोत्र करने से यह नियम कैसे घटता है?

हम बहुत हवन करने से एक स्थान पर असाधारण गर्मी उत्पन्न करते हैं। आस पास की वायु गर्म होकर ऊपर चढ़ जाती है और आपेक्षिक शीत वायु से मिल कर वर्षा का कारण हो सकती है।

प्रश्न वाह यह सिद्धांत तो बड़ा निर्मूल है। बनों और घरों को आग लगने से वर्षा क्यों नहीं हो जाती ?

उत्तर—महाशय धैर्य रखिये, इस प्रश्न का उत्तर आप को दूसरे सिद्धांत से मिलता है।

(ख) वाष्प युक्त वायु के शनैः शनैः ऊपर जाने से वर्षा होती है। भूमि के साथ वाली वायु जिस में वाष्प थोड़े हैं, वह भी गर्म होकर जब शनैः शनैः ऊपर चढ़ती है, तो धीरे २ ठण्डी होती जाती है। ऊपर कहे नियमानुसार इस का ताप कम हो जाने से वह कम वाष्प ग्रहण कर सकती है अर्थात वह थोड़े से वाष्प भी उसे परिपूर्ण कर देंगे, यदि उस वायु के शनैः शनैः चढ़ने में आंधी आदि या और कोई कारण बाधक न हो, तो आकाश में जाती हुई वायु ऐसे स्थान पर पहुंच जावेगी, जहां परिपूर्णता की सीमा में भी वाष्प उस में अधिक होकर मेघ रूप हो जावेंगे। शीत के कारण वस्तुवें जमती तथा सुकड़ती हैं

वाष्प भी एकत्र होकर गहरे बादल हो जायेंगे और फिर इस तरह वर्षा हो सकती है।

महाशय! इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट हो जायेगा। जब जंगल और नगर की आग लगती है, तो प्रायः आंधी चला करती है इस कारण वाष्प सारे वायु-मण्डल में फैल जाते हैं, स्थानिक वायु में नहीं रहते। अतः वर्षा नहीं हो सकती। परन्तु हवन की आग में कोई आंधी नहीं आती, वहां की वायु नियमित अग्नि में तपित होकर धीरे धीरे ऊपर चढ़ती है इसलिये वर्षा का कारण हो सकती है। हां यदि आंधी आ जावे, तो वर्षा की सम्भावना न होगी।

आक्षेप—भला मान लिया कि उपरोक्त सिद्धान्तानुसार हवन द्वारा वर्षा हो सकती है, परन्तु यह फल तो केवल नियमित विधि से लकड़ी जला कर प्राप्त हो सकता है, फिर सामग्री डाल कर धन व्यर्थ गंवाने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—महाशय! यह आक्षेप भी ठीक नहीं; क

पर हम सामग्री को कृमि नाशक, रोग नाशक, शारीरिक बलवर्द्धक सिद्ध कर चुके हैं। अतः उस का अपना लाभ बहुत है, परन्तु तुम्हारा आक्षेप बिल्कुल निर्मूल हो जाता है, जब हम वर्षा के तीसरे सिद्धान्त को देखते हैं।

(ग) वायु में कणों (अणुओं) द्वारा वर्षा होना।
सिद्धान्त यह है कि जिस वायु में छोटे छोटे मादि कण हों, उस में वाष्प जमने का कारण उपस्थित है, जो वायु इन कणों से रहित हो उस में वाष्प जम नहीं सके। अब अग्निहोत्र करके हम सुगन्धी दायक पदार्थों के छोटे दाने करते हैं, यह दाने वाष्प जमाने का कारण विशेष होने से शीघ्र वर्षा का साधन हो सक्ते हैं। सम्भव हो सक्ता है कि अन्य मादि कणों से हमारी सामग्री के दानो में अधिक गुण वाष्प जमाने का हो, यदि किसी अन्य वस्तु के दाने वायु में उपस्थित किये जावें, वह कणियों जमने की वृद्धि देने वाले हो सक्ते हैं।

पाठक गण अब हमने तीन प्रकार से सिद्ध किया

है कि अग्निहोत्र वर्षा का कारण होसक्ता है, वस्तुतः मनुष्य अभी तक ज्ञानसमुद्र के तट पर कंकर ही चुन रहा है, अतः कह नहीं सक्ते कि अन्य कितने कारण वर्षा लाने के होंगे, परन्तु इस में सन्देह नहीं कि शनैः शनैः जब हमारी बुद्धि बढ़ेगी, तो हम आर्य्य योगियों की सत्यता पहिचानेंगे।



द्वितीय भाग।

अर्थ समझने की आवश्यकता।

बहुतसे आर्य्य अग्निहोत्र नहीं करते। जहां उन को समय तथा धनके अभाव की शिकायत होती है, साथ ही यह भी प्रायः कहते हैं कि उन का मन अग्निहोत्र तथा सन्ध्या में नहीं लगता। ठीक है, मन तो किसी बात में तब लगे, जब उस का भी वहां कोई काम हो। "युग पज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्।" यह गौतम ऋषि के वचन हैं। एक काल में एक ही ज्ञान मन को हो सक्ता है। यदि सन्ध्या के मन्त्र ज्ञान पूर्वक पढ़े जावें, तो मन उन में अवश्य लगा रहेगा, परन्तु तोते की न्याईं जब केवल जबान शब्द निकाले, आत्मा से निकले हुवे शब्द न हों, मन कैसे लग सक्ता है? महाशय! अर्थों को समझने से ही मन लगेगा और प्रति दिन उन अर्थों पर अधिकार विचा।

रने से मन किसी अन्य विचार में लिप्त नहीं होसक्ता। जो बात हम सर्वदा सोचते रहें, वैसे ही बन जाते हैं। इस कारण जब सात्विक बातों का विचार सर्वदा करेंगे, तो सात्विकवृत्ति के हो जावेंगे। अर्थों के विना मंत्र उच्चारण करने से कोई लाभ न होगा, जैसा सोने का बोझा उठाने वाला गधा स्वर्णमय स्वयम् नहीं हो जाता। इस पौराणिक भाई सर्व प्रतिसर्ग राम को जोपते रहते हैं, पर फिर भी राम के गुणों को धारण कर मुक्ति के भागी नहीं हो सके, क्योंकि—

मन से तुच्छी पाप की, राम भजे क्या हो?
माला फेरत जन्म गया, पर गया न मन का फेर।
करका मनका छोड़ के, मनका मनका फेर॥

सज्जन पाठकों को छान्दोग्योपनिषद् में नारद सनत्कुमार की कथा विस्तार से सुनाने की आवश्यकता नहीं। नारद महाराज शोकसागर से पार उतरने के लिये सनत्कुमार राजर्षि के पास वास्तविक ज्ञानार्थ जाते हैं। यद्यपि संसार की सब उत्तम विद्याओं को पढ़

चुके थे, वह उन मे सन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि उन्हों ने जो कुछ पढ़ा था वह (नामैवैनत्) नाम मात्र ही था, उसे अनुभव नहीं कर सके थे, सत्यभाव को अनुभव करने के लिये, फिर से गुरुसेवा करते हैं। क्या ही उत्तम शिक्षा हम अहंकारी तुच्छ ज्ञानी मनुष्यों के लिये इस कथा में भरी है। नर नारी को उचित है कि नारद के समान अपनी तुच्छता को देखते हुवे, शोकातुर हों और प्रतिदिन शब्दों के अर्थों को अधिक २ जानने का यत्न करें। बिना समझे वेदमंत्रों को बोलकर उन का घात न करें, बलकि उन के पद २ की महिमा जानकर अपने आप को सुधारें। याद रखिये कि यदि वेदमंत्र का तात्पर्य्य न समझें, तो विरोचन असुर के समान गति होगी। वेद भगवान् स्वयं कहते हैं।

तद्विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः

शान्तिदायक, सर्वव्यापक परमात्मा के परम धाम को अर्थ, तत्व जानने वाले प्राप्त करते हैं।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः ।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।

सूक्ष्म अर्थों के जानने वाले, अपनी स्वच्छ और सूक्ष्म बुद्धि से, परमेश्वर का दर्शन कर सक्ते हैं ।

अग्निहोत्र करने का काल—जो सिद्धान्त जातीय उन्नति में पेश किया गया है, उस से पता लग गया होगा कि एक समय सब देश निवासियों का हवन करना अत्यावश्यक है । इस कारण हम मुण्डकोपनिषद् में पढ़ते है ।

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथा कालं चाहुतयो ह्याददायन ।

तन्नयन्त्येता: सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेको अधिवासः ।

जो पुरुष इन चमकती हुई लाटों में समय पर आहुति डालता रहता है सूर्य की किरनें उसे वहां लेजाती हैं जहां ब्रह्म का वास है (योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्)

सूर्योदय व अस्त होने से पूर्व या पश्चात् अग्निहोत्र किया जावे, इस विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों में बड़ा-विवाद है, जिसे लिखने की आवश्यकता नहीं। भगवान दयानन्द ने जो आज्ञा दी है कि

सूर्योदय के पश्चात और अस्त होने से पूर्व ही प्रति दिन होम करना चाहिये वह ठीक है। अतः नियम पूर्वक समय पर सब देश निवासियों को हवन करना उचित है।

अग्निहोत्र की विधि।

जिस स्थान पर हवन करना हो, उसे पूर्व अत्यन्त स्वच्छ मलरहित कर लेवें; आस पास मलीन और अनियमता से रखी वस्तुओं का दृश्य न हो, क्योंकि वह गन्दी वस्तुवें मन को, मंत्रों से हटा अपनी ओर आकर्षित करेंगी। साधारणतया लोग इस स्थान पवित्रता पर ध्यान नहीं देते, परन्तु यह सब से आवश्यक है, इस कारण इतने शब्द लिखने पड़े। जब सब पदार्थ शान्तिदायक आस पास हों तो हवन

करने से पूर्व देख लेना चाहिये कि सब आवश्यक वस्तुएं उपस्थित हैं - कुण्ड, समिधा, साधारण पलाशादि की लकड़ी, घृतपात्र, घृतचमस, शुद्ध सामग्री, धूप, कपूर, दियासलाई, जल तथा प्रोक्षणी पात्र। यह पदार्थ सब पवित्र हों और समिधा आदि में कई बार कीड़ियां या अन्य कृमि मौजूद होते हैं, उन को ध्यान से देखना चाहिये।

मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिये। ईश स्तुति के कुछ मन्त्रों का पाठ करे, जिस से धीरे धीरे मन संसार के व्यवहारों को भूल कर अंतर मुख होगा। फिर आचमन लेकर "ओं भूर्भुवःस्वः" से आरम्भ करके अग्न्याधान करें और फिर जैसे मन्त्रों की व्याख्या में बताया है, वैसे आहुतियां डालें।

इस प्रकार, यथा काल और यथाविधि हवन किया हुआ लाभदायक होगा, परन्तु विश्वास और श्रद्धा की आवश्यकता है। यदि एक दो वर्ष में लाभ होते मालूम न हों तो मायूस होकर त्याग न देना

चाहिये, परन्तु श्रद्धा पूर्वक यज्ञ करने से समय आ-जावेगा जबकि सुफलता दिखाई देगी। गौतम महाराज कहते हैं

"आप्तोपदेशः शब्दः स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्।" यथार्थ उपदेश दो प्रकार के होते हैं एक, जिन का फल सामान्य से देख सकें, जैसे किसी सज्जन ने कहा कि अग्नि में हाथ डालोगे, तो जल जावेगा। हमने कहना न मान कर हाथ डाल दिया, परन्तु दुःख भोगने लगे। दूसरा उपदेश ऐसा है जिस का फल दिखाई नहीं देता, जैसे अग्निहोत्र के फल, परन्तु ऋषि लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। वह इसे लाभदायक समझ कर स्वयम् करते थे और हम ने विज्ञान तथा तर्क द्वारा भी उसे लाभदायक देखा है। अतः अवश्य शुभ फल होते होंगे, हमें अविश्वास के सागर में डावांडोल न होकर यथा विधि और नियमपूर्वक होम करना चाहिये, उस के बदले में मुण्डकोपनिषद् के वाक्यानुसार अत्यन्त सुख प्राप्ति हो सकती है।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।

प्रियां वाचमभिवदन्त्यो ऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः।

" आवो ' आवो ' " ऐसा कह कर ब्रह्मवर्चस के देने वाली आहुतियां यज्ञ करने वाले को देवयान में से ले जाती हैं। उस का सन्मान करती हुई उसे यह मधुर वचन कहती हैं " यह आप का पवित्र ब्रह्मलोक है जिसे आप ने सुकर्मों से प्राप्त किया है " सज्जन पाठको ' श्रद्धा करो । इस विश्वास और श्रद्धा पर वेदों ने भी बल दिया है और शतपथ ब्राह्मण में अश्रद्धा को सुन्दरी स्त्री और श्रद्धा को कुरूपा स्त्री के समान कहा है। क्यों कि नरनारी अश्रद्धा के साथ बड़ा प्रेम करते हैं। बाह्य सुन्दरता की ओर मत जावो, सुन्दर बेर अन्तर कृमियों से भरा होता है, परन्तु खुरदरे छिलके से ढके नारियल में श्वेत गोरी

निकलती है । सत्यता की तलाश करो और उस पर दृढ़ रहो ।

आचमन करने का प्रयोजन-आचमन लेने से कण्ठ की कफ दूर होकर मधुर स्वर निकलेगा, जिसका असर हमारे तथा अन्यों के हृदयों पर अधिक होगा, (ख) यदि शरीर में सुस्ती हो, वह अङ्ग स्पर्श के उत्तम मन्त्रों से जल छिड़क कर दूर करनी चाहिये। (ग) यदि सुस्ती न भी हो, तो भी अङ्ग स्पर्श अवश्य करना योग्य है, क्यों कि नाम लिये अङ्गों पर अपनी इच्छा शक्ति (will force,) विशेष तथा केन्द्रित कर देने से उन अङ्गोंकी शक्ति बढ़ती है, यह सच्चाई पश्चिमी लोग भी मानते हैं क्यों कि सैन्डो के चलाये डैम्बैल व्यायाम में यदि इच्छा शक्ति अङ्ग पर न लगाई जावे, तो शरीर वृद्धि नहीं होती । आधुनिक भीम प्रो० राम-मुर्ति भी इच्छा शक्ति पर बल देते हैं, इन कारणों से अङ्गों पर जल छिड़कना बहुत उपयोगी है ।

(घ) वेद भगवान ने जल के प्रभाव को इस प्रकार कहा है :-

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।

जल में अमृत है, जल सर्वरोग औषधि है।

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।

जल सब रोगों के नाश करने वाला है। वह तुम्हारे लिये भी औषधि हो।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्।

जल सब रोगों का नाशकर्त्ता है, स्थिर रोगों से वह तुम्हें सुरक्षित करें।

(च) एवम् शतपथ ब्राह्मण में भी जल की बड़ी प्रशंसा की है, उसको रोगों का नाश करने वाला कहा है। यह जल अन्नादि सर्व प्रकार की औषधियों वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाला, सारी भूमि को आच्छादित करने वाला है और हमारी पृथिवी चारों ओर से इस जल से घिरी हुई है। वाष्प के रूप में जल ऊपर चढ़ता है, वैसे हमें ऊपर चढ़ने की शिक्षा देता है।

सारे जगत का आधार फिर जल पर है। अतः मनुष्य जल पर काबू कर सक्ता है। अर्थात् वर्षा का काबू करना मनुष्य के लिये कठिन नहीं।

आपो वा अस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा तदेनमप्स्वेव प्रतिष्ठापयति।

उपरोक्त कई कारणों से कुण्ड के चारों ओर जल की खाई बनाई जाती है और जल से अङ्ग स्पर्श किये जाते हैं, यज्ञवेदि को पृथिवी से उपमा दी जाती है, जैसे वस्तुतः भूमि को चारों ओर से जलनिधि ने घेरा हुआ है वैसे वेदी के चारों ओर जल डालने से अपने सामने हम भूमि का दृश्य लाते हैं, ताकि यज्ञों के करने से सकल भूमि का आधिपत्य हममें आवे और संपूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी होवें।

कीट आदि को कुण्ड में गिरने से रोकने के लिये, जो जल का उपयोग है, वह सब पाठकों को ज्ञात है।

आचमन तथा अङ्ग स्पर्श मन्त्राः

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥

इस से एक आचमन। हे अमृतरूपीजल ! तुम आच्छादन हो, मेरे सब पापों, रोगों और मलीनताओं को ढक कर शुद्ध करो।

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥

इससे दूसरा। हे अमृत रूपी जल ! तुम ढकने हो, मेरी बुरी कामनाओं और विचारों को आच्छादित करो।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

इस से तीसरा। हे अमृत ! तुम सत्य, यश तथा श्री हो, मुझ में भी सत्य, कीर्त्ति तथा ऐश्वर्य्य आश्रय लेवें।

जिन २ अङ्गों के नीचे नाम हैं, स्पर्श करते समय अपनी इच्छा शक्ति उन पर केन्द्रित करनी चाहिये और देखना चाहिये कि उन अङ्गों ने कोई बुरा काम तो नहीं किया।

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ॥ मेरे मुख में वाणी शुद्ध, मधुर और स्पष्ट हो ।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ मेरी नासिकाओं में प्राण नियम पूर्वक चल कर बल देवें ।

ओं अक्ष्णोर्मेचक्षुरस्तु ॥ मेरी आंखें भली प्रकार शुभ कर्मों को ही देखें ।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ मेरे कानों में सत्य वाणी सुनने की शक्ति खूब बढ़े ।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ मेरी भुजाओं में बल बढ़ता जावे ।

ओं ऊर्वोर्मेऽओजोऽस्तु ॥ मेरी जंघाओं में भी बल बढ़े ।

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहसन्तु ॥

मेरे शरीर के सारे रोग रहित रहें जो दृष्ट व अदृष्ट हैं, पूर्ण होकर साथ करें ।

अग्नि शब्द की व्याख्या

श्री यास्काचार्य्य ने अपने निरुक्त में अग्नि के धात्वर्थ भिन्नमतानुसार यूं बताये हैं;

"अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति संनममानः, अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविर्नक्नोपयति न स्नेहयति, इतादक्ताद् दग्धाद्वानीतादिति शाकपूणिः"

(१) अग्नि का नाम अग्नि इस कारण है कि वह अग्रणी रूप से सब यज्ञों में प्रथम उपयुक्त होता है। अग्निर्देवानाम् सेनानीः (देवताओं का सेनापति, नेता अग्नि है। स वा अग्रे देवानां इत्था नाम जायते तस्मादग्निर्नामेति (निःसन्देह वह अग्नि, देवताओं से आगे उत्पन्न हुआ इस कारण उसको अग्नि कहते हैं)

यज्ञों में पहिले अग्नि स्वरूप परमात्मा का ही ध्यान करते हैं, ताकि अग्नि के गुण धारण कर सकें और उसके मन्यु से भयभीत होकर शुभ कर्मों में जीवन

व्यतीत करें। यह अग्नि स्वरूप परमेश्वर सब संसार के निर्माण में पूर्व होने के कारण और सब के नेता होते हुवे अग्नि अग्रणी है।

(२) चूंकि अग्नि वस्तुओं के अवयवों को अपने अङ्गों के समान सूक्ष्म कर वायु मण्डल में मिला देता है, इस कारण [अङ्ग+नि (लेजाना)] अग्नि नाम है। जगदुत्पादक सर्वेश प्रकृति तथा जीवों को अपने २ कर्मों के अनुसार लगाकर सृष्टि स्थिति प्रलय रूपी व्यवस्था कर देता है अतः वह अग्नि है।

(३) पदार्थों को रूखा सूखा कर देने से और जलाने द्वारा होने से भी (अक सुखाना) अग्नि है, इसी प्रकार सब दुराचारियों को पूर्ण दण्ड देने वाला मन्यु रूप तपः परमात्मा है (तपः पुनातु पादयोः)-इस विचार से देवेश्वर न्यायशील पक्षपात रहित दयालु को अग्नि कहना ठीक है।

(४) (इण् धातु से) गति तथा प्रकाश उत्पन्न करना; (अञ्जु धातु से) रूपों को प्रकट करना,

(णिञ् धातु से) पिघलाना, बनाना, लेजाना-उपरोक्त शक्तियां रखने से भी अग्नि नाम पड़ा है और (अगि गतौ धातु से) चेष्टा, प्रयत्न तथा ज्ञान के अर्थों में भी अग्नि शब्द आता है। अग्नि गतिमान् है और दूसरे पदार्थों को गति देता है यह नियम इस के धातु से ही स्पष्ट है। ज्ञानस्वरूप, सृष्टि स्थिति प्रलय की चेष्टा करने वाला, संसार पोषक, ज्ञान प्रेरक होने से परमात्मा को अग्नि नाम से याद करते हैं। जो शिक्षाएं हम अग्नि के धर्मों से ग्रहण कर सक्ते हैं, वह कही गई हैं। उन से स्पष्ट हो गया होगा कि हम अग्नि को नहीं पूजते परञ्च इस के कर्मों को अपने जीवन में घटाना चाहते हैं और उस को परमात्मा का स्वरूप तथा उस की बनाई हुई वस्तु मान कर कलादि में लाभ लेना चाहते हैं और सब से बढ़ कर अग्निस्वरूप परमात्मा को याद करना चाहते हैं। याद रहे कि कठोपनिषद्, तैत्तरीयोपनिषद् और अन्य उपनिषदों में तथा वेद भगवान् ने स्वयम् कहा है कि अग्नि, परमेश्वर

का नाम है और उसका बनाया हुआ ही एक पदार्थ है अतः भौतिक-अग्नि को पूजा कौन कर सकता है ?

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥

इसी जगदीश्वर के भय से अग्नि तथा सूर्य तपते हैं और वायु, इन्द्र तथा मृत्यु अपना २ काम करते हैं । यह ख्याल हमारे पूर्वजों के हृदय में वास करता था, अतः वह परमात्मा के सिवा अग्नि पुजारी नहीं थे ।

"एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च"

इस श्रुति में जो [illegible] अन्तर्गत एक आत्मा है और चूंकि परमात्मा का अग्निस्वरूप [illegible] अग्नि रूप पर [illegible] किया था ।

ज्वाला शब्द की व्याख्या "ज्वलत् [illegible] देवा अग्नेरिति" में अग्नि नाम [illegible] की हवि से

जाने के लिये, अमुर प्राणी [illegible] जिस शब्द को कह कर, बुलाया जाता है वह स्वाहा है। पौराणिकों ने इस शब्द के कई अलंकार बांधे हैं। इसे हुतभुक्प्रिया, वन्हिवधू, [illegible], [illegible]प्रिया, अग्निभार्या, दक्ष कन्या कहा है। [illegible] लिहाज से 'मन्त्राणाम् फलदात्री' (मन्त्रों के फल को देने वाली) 'देव पोषण कारिणी' (देवताओं के पालन करने वाली) देव जीवनरूपा (देवों के जीवन का रूप) 'घोर संसार तारिणी' (भीषण संसार से तराने वाली) सिद्धिदा (इच्छाओं के पूर्ण करने वाली) इत्यादि नामों से पुकारा है। अन्यान्य और अलंकार को निकाल कर स्वाहा का सत्य स्वरूप [illegible] है।

ऋषि दयानन्द ने [illegible] है कि स्वाहा के अर्थ प्रकरण को देख कर करो। [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और युद्ध की शिक्षा [illegible], यज्ञ क्रिया, युद्ध प्रबन्ध को [illegible] आदि अर्थ भी [illegible] हैं। [illegible]

देते समय इस शब्द का उच्चारण तीन बड़ी शिक्षायें देता है (१) अग्नि में जो सामग्री डालते हैं वह पवित्र है, सन्मान तथा हर्ष सहित न कि कृपणता के साथ, हम हवि आग में डालते हैं। आनन्द पूर्वक उस (स्व)धन को (आहा) त्यागने से आत्मत्याग का भाव बढ़ता है। (२) उपरोक्त भावों से दी हुई हवि स्वीकार हो गई; अर्थात् अपना कार्य्य रोगनाशक आदि का वह पूरा करेगी ऐसा निश्चय भी स्वाहा शब्द से करना चाहिये। (३) जो प्रार्थनायें वेद मन्त्र द्वारा परम-दयालु, तेजोनिधि, बलदा, परिपालक, ऐश्वर्य्य-घन, नित्य सुख प्रदायक, सकल विश्वपोषक सर्वेश से हमने की थीं, वह भी स्वीकार हो गईं-ऐसे निश्चय तथा हर्ष का प्रकाश करने वाला स्वाहा शब्द को मानने से यह बड़ा रोचक बन जाता है।

" ओं " शब्द का भावार्थ।

योगाभ्यास करने में ओं शब्द और उसकी मात्राओं पर विचार किया जाता है। इस शब्द की

जितनी महिमा उपनिषत्कारों ने की है, वह पाठकों को उपनिषदों के पाठ से पता लग सकती है। इस पुस्तक में संक्षेप से "ओं" शब्द के अर्थ बताए जा सकते हैं। ओंकार की तीन मात्रा हैं। अकार, उकार, मकार (अ+उ+म्)। ओं शब्द के उच्चारण या ध्यान करते समय क्रमवार इन मात्राओं के अर्थों को विचारना चाहिए।

अकार: विराट्, अग्नि, विश्व।

विराट्—सर्व जगतप्रकाशक, राजेश्वर, सकल संसार नियन्ता, सर्वत्र व्यापक, प्रभु को विराट् कहते हैं। स्वामी के इन गुणों को भली प्रकार विचारना चाहिए। अग्नि—ज्ञान स्वरूप, ज्योतिर्मय, सर्वज्ञ, परम-पूज्य, प्रारब्ध माता का ध्यान भी अकार में करना चाहिए। विश्व-सारे विश्व का कर्त्ता, हर्त्ता, धर्त्ता, अन्तर्यामी होकर विश्व को चलाने वाला ईश भी अकार से ग्रहण करना चाहिये।

उकारः–हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस ।

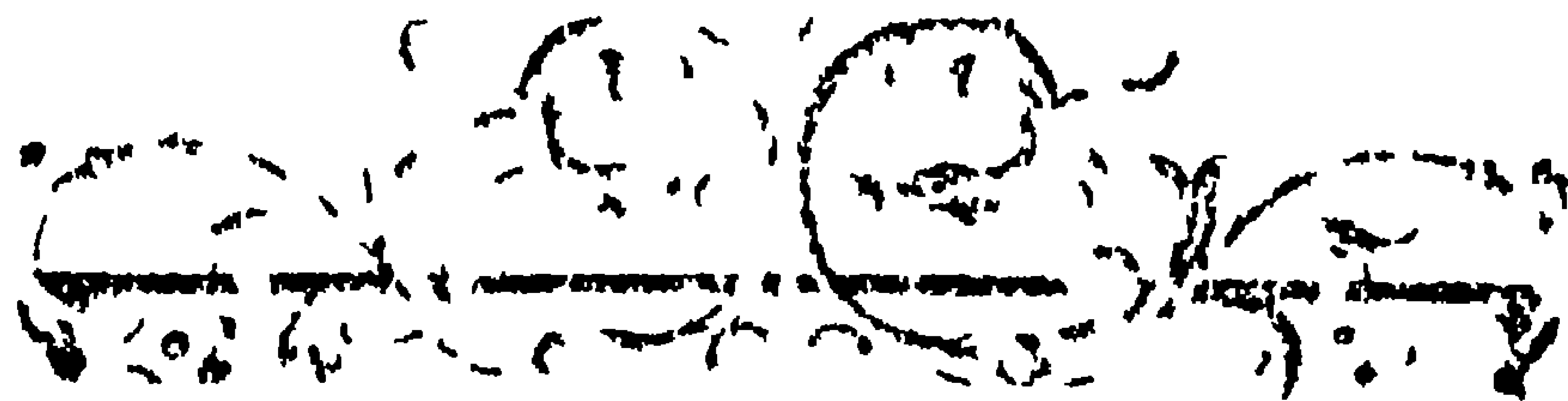
हिरण्यगर्भ–जो सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र तारागण आदि लोकों का धाता, गर्भ और निवासस्थान है, जिस पर सत्यविद्या, यश, ऐश्वर्य और तेज का आधार है, ऐसा परमात्मा हिरण्यगर्भ है। वायु-जो परमात्मा सर्व सामर्थ्य वाला होने से सब पदार्थों को नियम पूर्वक चलाता है और वायु के समान जो सारे विश्व में परिपूरित है, ऐसे परमात्मा को वायु कहते हैं। तैजस-स्वयम् प्रकाशस्वरूप और सूर्यादि लोक लोकान्तरों का प्रकाश देने वाला परमेश तैजस कहा जाता है। यश, तेज, वर्च्चस् की प्राप्ति के लिये उपरोक्त गुणों का वारंवार उकार में विचार करना योग्य है।

मकारः–ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ ।

जो प्रभु न्यायकारी, सर्वशक्तिमान्, जगदुत्पादक, अनन्त, ऐश्वर्यघन हैं, ऐसे उपास्य देव की पूजा ईश्वर नाम से मकार में प्रथम करनी चाहिए।

अनन्त पदार्थों के देने वाले, सब जीवों को प्राण तथा आजीविका देकर धारण करने हारे, अविनाशी, अजर, अमर, नित्य, शाश्वत, पुराण ऐसे पालन पोषण करने वाले सकल सामर्थ्य सागर और ज्योतिर्निधि परमात्मा आदित्य नाम से ध्यान करने चाहियें ।

जो स्वामी ज्ञानस्वरूप, सत्यविद्या और ज्ञान के देने हारे और जीवों के शुभाशुभ कर्मों के द्रष्टा, सब के हृदयों में अंगुष्ठमात्र वासनवत् होकर निवास करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, ईश, कवि हैं, वह प्राज्ञ कहे गये हैं। उपरोक्त ईश्वरीय गुणों को वारंवार योगाभ्यास करते हुवे विचारना मोक्ष की उपलब्धि करा सकता है ।



तृतीय भाग ।

मन्त्र-व्याख्या

ओं भूर्भुवः स्वः ॥

यह तीन शब्द बहुत उत्तम समझे जाते हैं, यहां तक कि इन में ३ वेदों का सारा गुप्त रहस्य कहा गया है । अतः देखना चाहिये कि किन २ अर्थों की वाचक यह व्याहृतियां हैं ?

(१) प्रथम यह ईश्वर के नाम हैं । "भूरिति वै प्राणः" जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय, और स्वयम्भू है, उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर का नाम है । "भुवरित्यपानः" जो सब दुःखों से रहित, जिस के सङ्ग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं उस परमेश्वर का नाम "भुवः" है । "स्वरिति-व्यानः" जो नाना विध जगत में व्यापक हो के सब

का धारण करता है, उस परमेश्वर को "स्वः" नाम से याद किया है।

(२) तैतरीयोपनिषदनुसार इन तीन शब्दों के चार अर्थ संसार तथा उस के पदार्थों को संक्षेप से दिखाते हैं। तीन लोक, तीन देवता, तीन वेद, तीन प्राण। (१) पृथिवि, अन्तरिक्ष, द्यौ; (२) अग्नि, वायु, आदित्य; (३) ऋक्, यजु, साम; (४) प्राण, अपान, व्यान। उपनिषतकार का कथन है कि इन अर्थों का अनुभव करने से ब्रह्म जाना जा सक्ता है, और इन अर्थों पर विचार करने वाले को सब देवता आत्मिक बल देते हैं।

"ता यो वेद स वेद ब्रह्म सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति"

सकल जगत् की उत्पत्ति, प्रलय, धारणा पर चिन्तन करने, संसार को जो स्थूल देवता तथा सूक्ष्म प्राण देवता धारण करते हैं, जिन को वेद रूपी सूक्ष्म ज्ञान चक्षुओं से देखा जा सक्ता है, उन पर भी चिन्तन

करने से हृदय की सब गाठें टूट सकी हैं यह पापों के मारने वाला टोटका है।

(३) यज्ञों के करने में जो अशुद्धियां यज्ञकर्ता कर देता है उन को दूर करने के निमित्त यह व्याहृतियां उच्चारण की जाती हैं। परमेश्वर के 'भूर्भुवः स्वः' नामी गुणों को याद करने से हम विधिपूर्वक यज्ञ करने में तत्पर होते हैं और यदि सावधानी से यज्ञ करते हुवे भी कोई त्रुटि रह गई हो, तो परमेश्वर स्वयम् क्षमा करें, ऐसा अभिप्राय, यज्ञ के आरम्भ में इन तीन व्याहृतियों के उच्चारण से है। अग्निहोत्र आरम्भ करने से पूर्व हम सावधान होना चाहते हैं, तो इन शब्दों का उच्चारण करते हैं।

(४) चौथा कारण इन व्याहृतियों के प्रथम उच्चारण करने में यह है कि यज्ञ ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये भी किया जाता है। ऐश्वर्य्य तीन शब्दों का संयोग है :—सुभाग, सुयश, सौन्दर्य्य; और यही भूर्भुवः स्वः हैं, अतः इन के उच्चारण से हम सुभा-

ग, सुयश तथा सौन्दर्य की प्राप्ति की इच्छा प्रकट करते हैं। यह इच्छा तभी पूर्ण हो सकती है जब हम विधि पूर्वक प्रतिदिन अग्निहोत्र करें।

(५) लोक विद्याप्राप्ति की इच्छा भी यह शब्द दिलाते हैं, " भूर्भुवः स्वः " से साकोवाक्य, इतिहास, पुराण ज्ञात होते हैं, उन के उच्चारण से सर्वथा विद्वान् होने की इच्छा प्रकट करना चाहिये।

भिन्न २ अर्थों के वारंवार मनन करने से मन की मलीनता और चञ्चलता दूर होगी और शुभ इच्छाएं प्रकट होकर, इन की प्राप्ति का यथा योग्य साधन होगा, इस कारण उपनिषदादि में इन शब्दों का महात्म्य बहुत है।

मन्त्र १

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

इस मंत्र की व्याख्या जो शतपथ ब्राह्मण में दी हुई है, उस से " भूर्भुवः स्वः " के यह अर्थ निकलते हैं।

(१) प्रजापति ने यह सकल संसार तप करके उत्पन्न किया, ताकि जीव सुख तथा मुक्ति के भागी हो सकें। वैसे हम सारे जगत् के भले के लिये तप अर्थात् आत्मत्याग करते हैं।

(२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, प्रजापति ने उत्पन्न करके जगत् का उपकार किया, वैसे हम मनुष्य मात्र के भले के लिये अपना जीवन व्यतीत करें।

(३) आत्मा, मनुष्य, पशु जैसे प्रजापति के उपकार से प्रकट हुवे, वैसे हम इन तीनों के उपकारार्थ यज्ञ करते हैं।

(४) "सत्यमेव व्याहृतयो भवन्ति, तदस्य सत्येनात्वधीयते" यह तीन शब्द सत्यवाचक हैं, अतः हम लोग भी शुद्ध मन तथा सत्यव्रतों से अग्नि स्थापन करें। जैसे तीन लोक स्थिर (सत्) हैं, वैसे हम भी परमात्मा के नियमानुसार चलते हुवे स्थिर रहें।

(५) अग्नि के तीन नामों के वाचक भी यह शब्द हैं:—पवमान, पावक, तथा शुचि। जिस अग्नि को स्थापित करना है, उस के उपरोक्त गुणों को धारण करने की याचना इस मन्त्र में है।

(६) 'भूर्भुवःस्वः' के पांच पद हैं-ऋतुवें भी पांच हैं, अर्थात् यह त्रिकालवाची शब्द हैं, उन के उच्चारण, ध्यान और मनन से अमृत होने का सङ्कल्प दृढ़ करते हैं।

(७) अन्तिम परन्तु आवश्यक अर्थ यह भी है - प्रियस्वरूप प्राण, बल का हेतु उदान, सब चेष्टादि कामों का हेतु व्यान—यह तीन वायु ईश्वर की कृपा से हमारे शरीर में सुख पूर्वक स्थित हों, ताकि बलवान् होकर हम यज्ञ क्रिया करें और निर्विघ्न उन्हें समाप्त कर सकें।

कतिपय पाठकों के मन में शायद यह विचार उत्पन्न हो कि उपरोक्त अर्थों में खींचा तानी की गई है, परन्तु ऐसा विचार अशुद्ध होगा। हमारे ऋषि

जन निस्सन्देह ध्यान पर बहुत बल देते थे, ताकि पूर्ण महत्व पदार्थों तथा शब्दों का मालूम हो।

खन चढ़या कुत आस्मान देखे
मैं वेखां अब्र शाही दा।

इस प्रकार इन तीन व्याहृतियों पर ध्यान देते हुये, मन्त्र के अगले भाग पर विचार करना चाहिये। (द्यौरिव) आकाश में विचरने वाले सूर्य्य के समान (भूम्ना) ऐश्वर्य्य से मैं युक्त हूं। (पृथिवीव) बिल्कुल भूमि के समान (वरिम्णा) अच्छे अच्छे गुणों की प्रसिद्धि से मैं युक्त हूं। (तस्यास्ते) आकाश युक्त लोक में रहने वाली (पृथिवी) भूमि (देवयजनि) जिस पर विद्वान् लोग यज्ञ करते हैं (पृष्ठे) ऐसी भूमि की पीठ पर (अन्नादम्) यव आदि सब अन्नों के भक्षण करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (आदधे) स्थापन करता हूं (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न के लिये, ताकि मैं होत्री अन्न प्राप्त कर सकूं।

इस मन्त्र में प्रथम यज्ञ के साधन बताये हैं, सत्त्व-गुण और शारीरिक उत्तम गुणों को धारण करने वाला अग्निहोत्री ठीक यज्ञ कर सकता है। (२) यह यज्ञ क्यों किये जाते हैं? ताकि ऐश्वर्य, यश, कीर्ति, समृद्धि अन्नादि प्राप्त हो सकें। (३) ऐसे अग्निहोत्री का क्या नाम है? भूमि को "देवयजनि" कहते हुवे स्पष्ट कह दिया है कि अग्निहोत्र यज्ञ करने वाले को देव कहते हैं। (४) 'अग्नि' को अन्न के भक्षण करने वाला क्यों कहा है? ईश्वर ने अपने पुत्रों को शिक्षा दी थी कि हवन इस प्रकार करो, अग्नि में हवि डाला करो, वह आहुतियां अग्नि खाकर अन्य भौतिक देवताओं को दे देगा। शतपथ ब्राह्मण में इस मन्त्र का यही उत्तर दिया है।

"स यो हैवमेतमग्निमन्नादं वेद अन्नादो हैव भवति"।

जो अग्नि को अन्न खानेवाला समझता है, वह स्वयम् अन्न खाने वाला हो जाता है, अर्थात् हवन करनेवाला समृद्ध होता है।

देवता इस मन्त्र के 'अग्नि वायु सूर्य्य' हैं। यही देवता आहुतियों को ग्रहण करने वाले तथा हमें वर्षादि से अन्न प्राप्त कराने वाले हैं, अतः यह विश्वास उत्पन्न होता है कि हमारा यत्न यज्ञ करने से निष्फल नहीं जा सक्ता।

मन्त्रों के देवता क्या होते हैं ?

यास्काचार्य्य ने देवता का लक्षण यूं किया है:— 'प्राधान्यस्तुति दैवता यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्य मिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति"

जिस की स्तुति वर्णन विशेषता से की जावे, वह देवता है-जिस वस्तु की प्राप्ति की इच्छा से ऋषि अपना अर्थपतिभाव-कामना पूर्ति चाहता है और जिस का मुख्यता से मन्त्र में वर्णन हो, वह उस मन्त्र का देवता होता है। अब इस मन्त्र में ऐश्वर्य्यदायक अग्नि का वर्णन है और वायु तथा सूर्य्य उस अन्न ऐश्वर्य्य की वृद्धि करने वाले हैं। अग्नि के साथ 'वायु सूर्य्य'

का मिलाना अत्यन्त ऐश्वर्य्य की कामना प्रकट करता है, जैसा कि मन्त्र के प्रथम भाग से सिद्ध है।

मन्त्र २

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथा मयंच। अस्मिन्त्सधस्थे ऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

(उद्+बुध्यस्व) भली प्रकार बुद्धि, तेज को प्राप्त हो (अग्ने) हे प्रसिद्ध भौतिक अग्नि ! (प्रति-जागृहि) सावधानी से जागो। (त्वम्) तुम (च) और (स) यह यज्ञ (सृजेथा) परस्पर मिल जावो (मयं) मुझे (इष्टापूर्त्ते) इष्ट सुखों के देने के लिये, ताकि मैं अपनी कामनायें पूर्ण कर सकूं। (अस्मिन्) इस (सधस्थे) गृह में (अध्युत्तरस्मिन्) जो पवित्र सुसज्जित, सुशोभित है (विश्वेदेवाः) सारे देवता-विद्वान् लोग (यजमानश्च) और यज्ञ करने वाले (उत) उन्नति पूर्वक बैठें।

आध्यात्मिक अर्थ

प्रकाश स्वरूप ज्योतिर्मय परमात्मन्! शुद्ध बुद्धि देकर अच्छी विद्या से प्रकाशित कीजिये; भली प्रकार हमारे सुख के लिये अविद्या रूप निद्रा को छुड़ा, विद्या से चेतन करिये। दयालु प्रभो! आप और यह शरीर दोनों हमारी सिद्धि के लिये मित्र जावें। आप की आज्ञा विरुद्ध यह शरीर कुछ न करे। इस पवित्र, सुशोभित, आश्चर्य युक्त शरीर में सब इन्द्रियां यज्ञ करती हुई उन्नति पूर्वक वास करें।

उपरोक्त मन्त्र कतिपय विचारों से बहुत उत्तम है।

"पुरुषो वै यज्ञः" ऐसे वाक्य उपनिषद् में आए हैं। शरीर को ब्रह्मचर्य में रखते हुए उसे पवित्र बनाना यज्ञ करना है। २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य रखना प्रातः काल का यज्ञ है, ४४ वर्ष का ब्रह्मचर्य मध्याह्न दिन का यज्ञ है और ४८ वर्षों का ब्रह्मचर्य सायंकाल का यज्ञ। इस कारण शरीर यज्ञ है। दूसरा सब इन्द्रियां शरीर को धारण करने के लिये आहुतियां दे रही हैं यह स्पष्ट है, अतः इस कारण भी शरीर यज्ञ हुआ।

(क) घरों की पवित्रता सफाई तथा सजाने पर बल देता है और जहां हवन किया जावे, वह स्थान कुरूप, मलीन, बदबूदार न हो, ऐसी शिक्षा देता है।

(ख) शारीरिक तथा आत्मिक पवित्रता पर भी बल है। इस के अतिरिक्त अग्निहोत्री कभी अपने मुख से यह शब्द नहीं निकाल सकता कि मेरा शरीर पवित्र है, यदि उस के मन में लोभ, मोह, ईर्षा द्वेष, असत्य वचन की मलीनता भरी हों। अतः शरीर को पवित्र करने के लिए इन सब दोषों से हटाने के यत्न होने चाहियें, ताकि प्रत्येक समय जब यह मन्त्र पढ़ा जावे, तो पूर्व से अधिक पवित्रता अपने में हम देख सकें।

(ग) विद्वान् तथा यज्ञ करने वाले सज्जन हमारे गृह को अपना निवासस्थान, सभामण्डल बनावें। यह तभी हो सकता है जब हम स्वयम् बहुत विद्वान् हों और ईर्षा तथा गर्व त्याग अन्य विद्वानों को

सेवा शुश्रूषा करने में बेइज़्ज़ती न समझें, जैसा कि आज कल के नीम पढ़े महाशय किया करते हैं।

(घ) मन्त्र का महत्व अधिक होजाता है, जब (उद्+सीदत) शब्दों पर विचार करते हैं। प्रथम मन्त्र में स्थूल वस्तुओं की प्राप्तिके अर्थ प्रार्थना थी। यह दूसरा मन्त्र "उद्" विद्या जैसे सूक्ष्म पदार्थों के लिये याचना है, अतः हम विद्या, यज्ञ, योगादि द्वारा ऊपर उठते हैं और सूक्ष्म अवस्था पर स्थिर बैठ जाते हैं। एक महात्मा ने सत्य कहा है कि:—

Thy praying heart lacks truth

ऊपर ऊपर पयारे संग प्रीत लगाई मन में प्रेम नहीं।
चित्रे गुल में रंग है गुल का व लेकिन बू नहीं॥

महाशयो ! यदि हार्दिक और सत्य मन से प्रार्थना की जावे, तो सुफल होती है कोई सन्देह नहीं।

मंत्र ३

ओं अयं त इध्मऽआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च-

सेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम।

(अयं) यह (इध्म) समिधा (ते) तेरा (आत्मा) जीव, प्राणों के धारण करने वाला (पुष्टिदायक) है। (जातवेदस्) हे चराचर जगत् के जानने हारे सर्वव्यापक, सर्वविद्याभण्डार, ज्ञानमय, वेदों तथा संसार के पदार्थों को उत्पन्न करने हारे, शुद्ध बुद्ध स्वरूप जगदीश्वर-परन्तु यहां भौतिक अग्नि को जातवेदस् कहा है। (तेन) उस लकड़ी द्वारा (इध्यस्व) चमको (वर्धस्व च) और वृद्धि को प्राप्त करो। (च+अस्मान्) तथा हम को भी (इद्ध) चमकाओ—तेजस्वी ओजस्वी, यशस्वी करो (वर्धय) और हमारी खूब वृद्धि करो। (प्रजया) पुत्र पौत्रादिक सन्तान से (पशुभिः) गौ, बैल, घोड़े, हाथी आदि पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्म जानने वाले महात्माओं के ओज से (अन्नाद्येन) खाने योग्य अन्न से (समेधय) उपरोक्त पांच प्रकार से हमें युक्त करो (स्वाहा) हर्ष का

अवसर है कि हमारी उपरोक्त प्रार्थना स्वीकार होगई (इदम्) यह हवि (अग्नये) इस भौतिक अग्नि को है (जातवेदसे) जो सर्व पदार्थों में विद्यमान है। (इदम्) यह आहुति (न मम) मेरी मलकियत नहीं।

(१) पूर्व दो मन्त्रों में अन्न, पशादि स्थूल और विद्यादि सूक्ष्म पदार्थों की प्राप्ति की प्रार्थना की गई है, वह प्रार्थनायें (सन्तान, पशु, अन्न के लिए) इस मन्त्र में भी पाई जाती हैं, परन्तु इस मन्त्र में उन दोनों मन्त्रों से बढ़ कर एक प्रार्थना है, वह यह कि अग्निहोत्री योगियों और परमात्मा के जिज्ञासुओं के तेज से युक्त होना चाहता है। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि ऋषि श्वेतकेतु सफ़र से लौटकर जब अपने शिष्य को देखते हैं, तो शीघ्र ही यह शब्द निकलते हैं:–

"ब्रह्मविद् इव सोम्य ते मुखं भाति"

"हे प्रिय ! तेरा मुख परमेश्वर को जानने वालों के समान चमक रहा है"। साधु महात्माओं के शिर की छवि सारे संसार में प्रसिद्ध है, सो उस तेज को प्राप्त करने की कामना इस मन्त्र में की गई है। यह तभी हो सकती है, जब सुकर्म किये जावें। अतः प्रतिदिन अग्निहोत्र करते समय यह देखना उचित है कि आचार में कितनी उन्नति हम ने की है।

मन्त्र ४.

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये
इदन्न मम॥

हे विद्वान् जनो ! (समिधा) जिन लकड़ियों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता हो, उन लकड़ियों से तथा (घृतैः) सुगन्ध दार वस्तुओं से मिले घी से (अग्नि) भौतिक अग्नि को (बोधयत) प्रकाशित करो। (अतिथिम्) उस अग्नि को अतिथि महमान जान कर (दुवस्यत) उस की सेवा सत्कार

करो—(अस्मिन्) उस अग्नि में (हव्या) हवियां (आजुहोतन) मानुष से भली प्रकार डालो।

(१) इस मन्त्र को पढ़ कर समिधा नहीं डालनी। अगला मन्त्र पढ़ कर ही दूसरी समिधा डालनी है, परन्तु इस मन्त्र में जो शिक्षा दी गई है, उस पर ध्यान देना चाहिये। ऊपर पुत्र, पशु, अन्न, विद्या, ब्रह्म वर्चस् प्राप्ति की प्रार्थना की गई थी, अब परम दयालु परमात्मा इन को प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन बताते हैं कि विद्वान् लोग यथा-योग्य इन्धन से अग्नि को प्रज्वलित कर यानों कला यंत्र आदि की रचना नित्य किया करें। आधुनिक कलाओं के प्रयोग से पश्चिम ने पुत्र, पशु, अन्न, विद्या आदि की प्राप्ति करली है और किस प्रकार वह सदैव सुख वृष्टि कर रहे हैं वह सब को ज्ञात है। परमेश्वर की उपरोक्त आज्ञा का पालना न करके भारतवर्ष इस समय दुखी हो रहा है। साथ ही पश्चिम धर्म रहित होने से दुःख का भागी हो रहा

है, यदि धर्मयुक्त विधियों से कलाओं का प्रयोग करें, तो ब्रह्म वर्चसी भी हो सक्ते हैं । हमें धर्म पूर्वक कलाओं का इस्तेमाल करना चाहिये, नहीं तो हम भी पश्चिम से अधिक दुःखसागर में पड़ेंगे।

मन्त्र ५.

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये
जातवेदसे इदन्न मम ॥

हे मनुष्यो ! (तीव्र) सब दोषों के हटाने में तीव्र स्वभाव वाले (घृत) सामग्री घी आदि पदार्थ (जुहोतन) हवन में डालो (अग्नये) ऐसे भौतिक अग्नि के लिये जो (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रकाश देने वाला (शोचिषे) शुद्ध किया हुआ और रोगों को दूर करने वाला है (जातवेदसे) और सब पदार्थों में विद्यमान है ।

भाव । शुद्ध किये हुवे और रोगों को दूर करने वाले पदार्थ अग्नि में डाल कर उस को प्रज्वलित

करना चाहिये--अग्निहोत्र का रोग निवारक गुण इस मन्त्र में परमात्मा दिखाते हैं और कैसे तथा किस प्रकार पदार्थ डालें, उस का भी उपदेश है।

मन्त्र ८.

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।[1]
बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नये ऽङ्गिरसे इदन्न मम।

(अङ्गिरः) सुखदायक पदार्थों को प्राप्त कराने (यविष्ठ्य) और वस्तुओं के परमाणुओं को छिन्न भिन्न करने में जो अतिबलवान् अग्नि है (बृहत्) और जो बड़े तेज से युक्त है (शोचा) जो खूब प्रकाश करता है (त्वा) उस अग्नि को (समिद्भिः) लकड़ियों से (घृतेन) और घी आदि से (वर्द्धयामसि) हम लोग बढ़ाते हैं।

शतपथ में इस मन्त्र का अर्थ यूं किया है।

---

[1] इस मन्त्र को पढ़कर तीसरी समिधा अग्नि में डालनी चाहिये।

ओं, अङ्गिरः * नामी अग्ने ! हम तुम्हें लकड़ियों तथा घी से वृद्धि देते हैं। सर्वदा बलवान् हो भली प्रकार चमको। जैसे अग्नि को घी आदि से वीर्य्यवान् किया जाता है ऐसे हम को सर्व प्रकार से बलवान् और प्रकाशित कीजिये यह प्रार्थना है।

मन्त्र ३

ओं अयन्त इध्मऽआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्ववर्धस्व००

यह वही तीसरा मन्त्र है जिस के शब्दार्थ, भावार्थ पूर्व कह चुके हैं। इस मन्त्र को पांचवार एक २ आहुति घी की डाल कर पढ़ना चाहिये। मन्त्र की व्याख्या में यह दिखाया गया है कि पांच वस्तुओं के लिये प्रार्थना है। (१) जैसी वस्तुएं दयालु परमात्मा हमारे योग्य समझें, वह हमें दान दें। साथ हम भी अपने हृदय की कामना प्रकट करते हैं कि (२) पुत्रपौत्र, (३) पशु (४) अन्नादि (५) ब्रह्मवर्चस् हम को प्राप्त हों। जब हम मन्त्र उच्चारण

---

* अङ्गारों में रहने के कारण अग्नि का यह नाम है या अङ्गों का सूर्य्यरूप से पोषण करने वाला होने से, अग्नि को अङ्गिरः कहागया है।

धीरे धीरे करें, तो प्रथम वार प्रथम याचना पर बल पूर्वक चिन्तन करें, अपनी इच्छा शक्ति को उस पर केन्द्रित करदें, तो वह वस्तु प्राप्त हो सकेगी। ऐसे ही दूसरी वार मन्त्र पढ़ते हुवे २य याचना पर इच्छा शक्ति लगावें, इसी प्रकार ही अन्य बारियों में समझ लेना चाहिये। क्योंकि इस मन्त्र के भाव अत्युत्तम हैं, इस कारण यही मन्त्र पांच वार रक्खा गया है।

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व से चारों दिशाओं में चारों ओर अञ्जलि में जल लेके छिड़कना चाहिये, एक २ मन्त्र से एक २ दिशा में जल डालें।

८ म मंत्र (क)

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व। इस मन्त्र से पूर्व दिशा में अदितिरिति पदनामसु पठितम्। निघ० ५। ५ अदितिरिति पृथिवी नामसु पठितम्। १। १ इस शब्द के अर्थ ज्ञानस्वरूप, अविनाशी, पर-

माहमा के ग्रहण किये जाते हैं, इस के अर्थ पृथिवी तथा आकाश भी हैं।

अदितिः—यज्ञस्यानुष्ठाता यजमानः, यज्ञस्यज्ञाता पालकार्थो गृह्यते।

अदिति के अर्थ यजमान के भी हैं और फिर उस परमेश्वर के भी जो हमारे किये हुवे यज्ञों को जानने वाला है और जो हमारा पालक पोषक है। जैसा प्रकरण हो उस के अनुकूल अर्थ ग्रहण करने चाहियें। यहां सब से अन्तिम अर्थ में-यज्ञों के जानने वाला तथा पोषक ईश, अदिति शब्द लेना चाहिये। वस्तुतः अब यज्ञ आरम्भ होता है इस में सुमति सुबोध की याचना हम ज्ञानवान् प्रभु से करते हैं, ताकि कोई अशुद्धि हवन करते समय हम से न हो। विधि पूर्वक निर्विघ्न हम हवन कर सकें। इस कारण ही यह याचना अगले दो मन्त्रों में भी की है।

८ म मंत्र (ख) (ग)

ओं अनुमते ऽनुमन्यस्व। इस से पश्चिम दिशा में,

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व । इस से उत्तर दिशा में, वह परमात्मन् जो अनुमति है अर्थात् जो बुद्धिरूप ज्ञानमय है, जिस ने वेदों की सत्य शिक्षा मनुष्यों को दी और अपने प्रियों की बुद्धि उन वेदों के पढ़ने में लगाता है— वह स्वामी हमें शुभ बुद्धि दे।

वह प्रथम माता जिसे जगदम्बा कहते हैं, जो हमारी जनित्री है वही सरस्वती है, वह बहु प्रकार से वेदादि सत्य शास्त्र के देने वाली, प्रकाशित विज्ञान तथा सत् क्रियाओं में हम मनुष्यों को लगाने वाली, वेदों के अर्थ तथा अच्छी शिक्षा देने वाली दयालु माता है वह हमें सुबुद्धि देवे।

८म मन्त्र (च)

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पति र्वाचं नः स्वदतु ॥ *

* इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कना चाहिये।

(देव) देवों के देव, सर्व सुखदाता, सूर्य्य चन्द्र आदि से लेकर अदृश्य जीवों पर्य्यन्त सारे संसार में क्रीड़ा करने हारे; (सवितः) चराचर जगदुत्पादक, संपूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त तथा सकल ऐश्वर्य्य के दाता, (प्रसुव यज्ञं) भली प्रकार यज्ञ की वृद्धि करो।

प्रथम यज्ञ के अर्थ जानने चाहियें।

(१) इस लोक और परलोक के सुख के लिये विद्या ज्ञान और धर्म के सेवन से जो बड़े २ विद्वान् हैं उन का सत्कार करना यज्ञ है। (२) पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से विविध प्रकार की विद्याओं का प्रकाश करना यज्ञ है। (३) विद्वानों का नित्य समागम करना और विना लोभ के सत्य-विद्या, धर्म तथा सुखों का दान देना भी यज्ञ है। सर्व प्रकार के विज्ञान तथा शिल्प का पढ़ना पढ़ाना, उन के परिणामों को प्रत्यक्ष करके सिद्ध करना, अग्निहोत्र से लेकर राज्य पर्य्यन्त सब व्यवहार, स्त्री पुरुषों के वर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार, यह सब यज्ञ

कहलाते हैं। यज्ञ के अर्थ स्पष्ट करने में यजुर्वेद के अध्याय का २३ मन्त्र अत्युत्तम है।

यदि उपरोक्त यज्ञ बढ़ें, तो पारस्परिक सुख, विद्या, रक्षा, बल, धन, उन्नत होते जावें और परोपकारार्थ लोभ, मोह, अहंकार, ईर्षा, द्वेषादि तामसिकगुणों को सदैव क्रमशः मनुष्य नाश करदें। इस कारण ऐसे २ यज्ञ करने वाले उत्तम पुरुषों की आवश्यकता है इसी लिये सविनय परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि (प्रसुव यज्ञपतिं) ऐसे यज्ञ करने वाले सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन भी उत्पन्न करिये अर्थात् हम जो अग्निहोत्र करने वाले हैं, हम में ऐसे यज्ञ करने की पवित्र इच्छा उत्पन्न करिये और शारीरिक आरोग्यता को प्राप्त करा चक्रवर्त्ती राज्य, लक्ष्मी तथा स्वतन्त्रता को प्राप्त कराइये।

(भगाय) ताकि हम ऐश्वर्य युक्त धन धारण कर सकें, व पवित्रता को अपने जीवन से संघटित कर सकें। (दिव्यः) हे दिव्य गुण युक्त प्रभो! (गन्धर्वः)

गन्धयुक्त पृथिवी और उस के सब पदार्थों के धारण-कर्ता स्वामिन् (केतपूः) आप स्वयम् बुद्धि को विमल करने वाले हैं, आप प्रज्ञान स्वरूप हैं अतः (वः) हम दीन यज्ञ करने वालों को (केतम्) बुद्धि भी (पुनातु) शुद्ध पवित्र करिये (वाचस्पतिः) आप वाणी वेद की भगवती कल्याणी वाणी के मालिक हैं (नः) हमारी (वाचं) वाणी को भी पवित्र करिये, ताकि जब हम वेद मन्त्र पढ़ें, तो वह शुद्ध, स्पष्ट, सुरीली, रसीली, कोमल, मधुर प्रकट हो।

पाठकगण ! यज्ञ के आरम्भ में इसी उत्तम प्रार्थना की आवश्यकता, तब प्रतीत होती है जब कि आधुनिक संसार पर एक दृष्टि डाली जावे। कैसे प्रभु से भयभीत न होने वाले, मूढ़, निर्लज्ज, कुटिल, मिथ्याभिमानी, क्रोधी, कपटी, दम्भी, अभिमानी, निर्दयी दुष्ट इस पृथिवी को कलङ्कित कर रहे हैं ? इन सब को सुपथ पर लाने के लिये और अपने दोषों को दूर करने के लिये यह प्रार्थना अत्यन्त उत्तम है :

अब चार मन्त्रों की व्याख्या की जावेगी, जिन को पढ़कर केवल घी की आहुति देनी चाहिये। पहिले मंत्र से कुण्ड के उत्तर भाग में, दूसरे मंत्र से दक्षिण भाग में और तीसरे चौथे मंत्र से कुण्ड के मध्य में आहुति देनी चाहिये।

१म मंत्र

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम।

(क) अग्निस्वरूप परमात्मा के लिये यह आहुति है। यह आहुति उसी ज्योतिर्मय ईश की है मेरी नहीं।

(ख) अग्निस्वरूप परमात्मा को मैं सद्वेद वाणी से याद करूंगा, ऐसा संकल्प करो। अग्नि से प्रयोग लेने के लिये सत्यवाणी और प्रियाचरणयुक्तविद्या मनुष्यों को प्रयुक्त करनी चाहिये अर्थात् अग्नि (heat) शास्त्र को उन्नत करना चाहिये।

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्नमम।

(क) चन्द्र के तुल्य शान्ति, कान्ति, आनन्दादि गुणों के धारण करने वाले और उन के देने वाले, सब पदार्थों के बनाने वाले, पदार्थ विद्याओं में बुद्धिप्रेरक, सन्मार्ग पर चलाने वाले, सकलैश्वर्य के दाता, योगविद्या से सिद्ध ऐश्वर्य के दाता, सोमादि ओषधियों के उत्पन्न करने हारे, तथा सर्वरोगनाशक जगदीश्वर के लिये यह आहुति देता हूं। यह उसी आनन्दघन सर्वेश की है मेरी नहीं।

(ख) ओषधियों के ज्ञान के लिये वैद्यक की पुरुषार्थ युक्त विद्या मनुष्यों को उपलब्ध करनी चाहिये, ऐसी शिक्षा भी साथ परमात्मा ने दी है।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदम् प्रजापतये इदन्नमम

(क) सकल संसार के उत्पन्न कर्ता, चराचर जगत् के आत्मा के लिये यह आहुति देता हूं ।

(ख) "प्रजानाम् पतिः पालन हेतुः सूर्य्यः" संसार को जीवित रखने और पालने का कारण सूर्य्य है, अतः प्रजापति के अर्थ यहां सूर्य्य के लेते हुवे, मन्त्र के अर्थ यह

होंगे, कि सूर्यादि लोकों को जानने के लिये ज्योतिष विद्या और पदार्थविद्या का प्रचार करना चाहिये।

ओं इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्नमम।

(क) परमैश्वर्ययुक्त ईश, जो विद्या प्रकाशक, अविद्या तथा सब दुःखों के नाशक, शत्रु विदारक, ऐश्वर्यवर्द्धक, तथा चक्रवर्त्ति राज्य के दाता हैं उन को यह चौथी आहुति देता हूं।

(ख) इन्द्र, विद्युत् और इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा का नाम है; अतः यहां दोनों अर्थ लेने चाहियें।

विद्युत् से प्रयोग लेने के लिये मनुष्य विद्युत्-शास्त्र को उन्नत करें और जीवात्मा के तत्वों के जांचने के लिये अध्यात्मविद्या (Metaphysics) को खूब बढ़ावें।

चार प्रकार की ज्योति संसार में पाई जाती है। (१) दो वस्तुओं के संघर्षण या रगड़ से उत्पन्न होने वाली भौतिक अग्नि।

(२) सूर्यादि स्वतः प्रकाश युक्त लोक तथा अन्य और वस्तुवें-जुग्नु, बूटियां, समुद्र के कीड़े।

(३) स्वतः प्रकाशक पदार्थों मे ज्योति लेकर प्रकाशित होने वाले चंद्रमा आदि लोक।

(४) विद्युत् की ज्योति।

इन चार ज्योतियों का वर्णन उपरोक्त चार मन्त्रों में किया गया है और मनुष्यों को कृपानिधि परमात्मा उपदेश देते हैं कि उन को जानने तथा उपयुक्त करने के लिये, तुम यथायोग्य उपाय करो। तत्सम्बन्धी विद्यायें निकालो और उन से लाभ उठाकर सुखी होवो। प्रति दिन दोवार परमेश्वर के उस उपदेश को सुनते हुए यदि उत्तरोत्तर उत्साह न बढ़े, तो हम बड़े मूर्ख होंगे, अतः देखना चाहिये कि हमारी जाति और हमने इन विद्याओं के बढ़ाने अथवा शिल्प, व्यापार तथा कृषि में प्रति दिन वृद्धि की व न? भारतवर्षीय जो १५ या अधिक से अधिक ३० रुपये प्रतिजन वार्षिक आय रखते हुए भीषण अजगर रूपी

दरिद्रता के मुख में पड़े पीड़ित हो रहे हैं, वह उस उपदेश के अनुसार कर्म करते हुए शीघ्र आपत्तियों का नाश कर सकते हैं और पूर्ववत् शक्तिशाली बन सकते हैं। प्रत्येक को समझ कर अग्निहोत्र करने से कोटिशः लाभ होसकते हैं, परन्तु लोग उस के महत्व को भूल मुख मोड़े हुए पड़े हैं। परमेश्वर की कृपा से आज कल हमारे शासनकर्त्ता उपरोक्त सब विद्याओं में चतुर हैं और इन्हीं विद्याओं से सारे पश्चिमीय लोग उन्नति के शिखर पर पहुंच रहे हैं। आङ्गल राज्यशान्ति, विद्या, तथा निष्पक्षपातता का लाभ उठाकर प्रतिदिन वृद्धि करनी चाहिये।

प्रातःकाल हवि डालने के ४ मंत्र

मन्त्र १०

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥

(सूर्यः) चराचर, सकल संसार का आत्मा, सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक परमेश्वर (ज्योतिर्ज्योतिः) चमकने वाले लोकों का भी प्रकाशक है (सूर्यः) वह सब के भीतर स्थित हुआ २ प्राण-जीवन का हेतु हो रहा

है। ऐसे परमात्मा की आज्ञा पालन करके सारे जगत् के उपकारार्थ यह एक आहुति देता हूं।

(२) जो सब जगत का आत्मा परमेश्वर है, वह सब की आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश देता है। जो सूर्य्य अपने प्रकाश द्वारा सर्व क्रियाओं का हेतु है और मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाशक तथा हमारी आहुतियों को लाभदायक बनाने वाला है उसे यह आहुति देता हूं।

(३) प्रातः काल के समय जब अन्धकार के बादलों को फाड़ कर सूर्य्य निकलता है, तो यह चमत्कार, प्रकाश, ज्योति किस की होती है? सूर्य्य की, अतः सत्य कहा है :—सूर्य्य प्रकाश है और प्रकाश सूर्य्य से उत्पन्न होता है।

मन्त्र ११

सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा

(क) (सूर्य्य) तेजोमय परमेश्वर (वर्चः) विद्या, विज्ञान, प्रकाश के देने वाला है। (ज्योतिः) जैसे सूर्य्य का प्रकाश एक स्थान पर नहीं रहता,

सर्वत्र फैल जाता है वैसे परमेश्वर (वर्चः) ब्रह्म तेज देने वाली विद्याओं का प्रचार हम से कराने वाला हो।

(ख) (सूर्यो वर्चः) सूर्य शारीरिक तथा आत्मिक बल के प्रकाश करने वाला है और विद्या के प्रकाश करने वाले ज्ञान को कहता है। (ज्योति वर्चः) प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर यथाविधि हवन किये हुवे पदार्थों को अपने रचे हुवे पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाने और तेज देने वाला हो।

(ग) सूर्य नामी परमेश्वर तेज का देने हारा है। जो शारीरिक ज्योति मनुष्यों के चेहरे पर होती है वह (वर्च.) ब्रह्मज्ञान से उत्पन्न होती है अतः (वर्चोदा असि वर्चो मे देहि) वर्चस् देने वाला है। हमें वर्चस् तथा तेज दे।

मन्त्र १०

ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा

(ज्योतिः) जो ईश्वर स्वयम् प्रकाशमय है

(सूर्यः) और सारे जगत् के प्रकाश करने वाला है (सूर्यः) और सकल संसार का ईश्वर है (ज्योतिः) और प्रकाश तथा ऐश्वर्य का देने हारा है, ऐसे अग्नि-नाम ब्रह्म की प्रसन्नता के लिये हम होम करते हैं ।

(क) उपरोक्त तीन मन्त्रों का परस्पर सम्बन्ध

पहिले और तीसरे मन्त्र के शब्द समान हैं, परन्तु क्रम में भेद है, कारण यह कि जिन गुणों के वाचक यह शब्द हैं परमात्मा के वह अत्यन्त उत्तम गुण हैं। जितना भी उन पर अधिक विचार किया जावे उतना थोड़ा है। रोचक बनाने के लिये शब्दक्रम भिन्न कहे जा सकते हैं, परन्तु उन का आशय बड़ा गूढ़ है । पहिले मन्त्र में सूर्य्य शब्द ने दोनों ओर से ज्योति को घेरा हुआ है और तीसरे में ज्योति ने सूर्य्य को घेरा तथा छिपाया हुआ है। जब हम सूर्य्य लोक को देखें, तो ज्योति ही ज्योति दिखाई पड़ती है। वास्तविक सूर्य्य प्रकाश में छिपा होता है-इसी प्रकार यह संसार ही संसार दिखाई देता है, संसार को प्रकट

करने वाला सूर्य छिपा हुआ है, परन्तु वह ज्योति कहां से उत्पन्न होती है ? सूर्य तथा सूर्यरूपी परमात्मा से-इस कारण पहिले मन्त्र में सूर्य ने ज्योति को घेरा हुआ है। यही सूर्य बुद्धि-तेजोमय है वही सब विद्याओं का दाता है, ऐसा वर्णन करके दूसरे मन्त्र में बताया कि वही ज्योति वर्चस् के देने वाली है, फिर तीसरे में बताया कि वह वर्चस् अपने धारण करने वाले को छिपा लेता है, जैसे महात्माओं तथा महाराजों के मुखों की छवियां हो प्रजा देखती है, परन्तु मुखाकार नहीं देख सकीं।

(ख) तीनों का सम्बन्ध यूं भी वर्णन कर सकते हैं। सूर्य्य स्वरूप परमात्मा की ज्योति उसी में अन्तर्गत या गुप्त होती है जिसे हम देख नहीं सक्ते। (प्रथममन्त्र) परंतु अब हमने यह अनुभव कर लिया कि वह परमात्मा ब्रह्मज्ञान के देने वाला और सूर्य्य लोक को भी तेज देने वाला है और उस को जानने के लिये ब्रह्मज्ञानी होना चाहिये (दूसरामन्त्र) तब परिणाम

यह होगा कि जिस ज्योति की तलाश में हम लोग हैं वह अपने आप को प्रकट कर देती है जैसे कि तीसरे मन्त्र में ज्योति सूर्य्य से दोनों ओर बाहिर निकली हुई है। सज्जन पाठको! इस प्रकार का उत्तम विचार इन मन्त्रों में है—दृढ़ता से इन पर विचार कर के ब्रह्मज्ञानी बनो।

मन्त्र. १३

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या
जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा।

(देवेन) प्रकाश डालने वाली (सवित्रा) ब्रह्म-बुद्धि से (उषसा + इन्द्रवत्या) सुन्दर ऐश्वर्य्य युक्त रंग बरंगी उषा के साथ (सजूः) मिला हुआ (सूर्य्यः) सूर्य्य लोक (सजूः) सर्वत्र समान (जुषाणः) सेवन करता हुआ या व्याप्त होकर हवन किये हुवे पदार्थों को आनन्द से (वेतु) देश देशान्तरों में पहुंचाने के लिये ग्रहण करे।

(१) पौ फटने से पूर्व का समय ब्रह्म मुहूर्त क-

हलाता है उस में बुद्धि प्रेरक ब्रह्म का ज्ञान हो सक्ता है, चूंकि सूर्य निकलने पर इस काल का अंत होता है अतः हम कह सकते हैं कि ब्रह्ममुहूर्त तथा सवित्री का वास सूर्य में है। शतपथ ब्राह्मणानुसार 'सवित्री' शब्द को मन्त्र में रखने का उद्देश्य यह है कि ब्रह्म बुद्धि यज्ञ करने से मिल सके।

(२) 'उषा' को अग्निहोत्र का काल दिखाने के लिये रक्खा गया और 'इन्द्र' शब्द सारे दिन में ऐश्वर्य प्राप्ति हो—इस कारण प्रयुक्त किया गया है।

सायंकाल हविः डालने के चार मन्त्र यह हैं:—

मन्त्र १४. अ॒ग्निर्ज्योति॒र्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॑।

,, १५. अ॒ग्निर्वर्चो॒ ज्योति॒र्वर्चः॒ स्वाहा॑।

,, १६. अ॒ग्निर्ज्योति॒र्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॑।

,, १७. स॒जूर्दे॒वेन॑ सवि॒त्रा स॒जू रात्र्येन्द्र॑वत्या। जु॒षा॒णो अ॒ग्निर्वे॑तु॒ स्वाहा॑।

(१) चन्द्र तारा आदि ज्योतिः प्रकाश तथा ऐश्वर्य युक्त लोकों से युक्त रात्रि वाली अग्नि यह अर्थ इन शब्दों के लेने चाहियें।

सूर्य के स्थान पर अग्नि शब्द प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि सायंकाल सूर्य के अस्त होने पर यदि कोई ज्योति होती है, तो वह भौतिक अग्नि होती है जिसे मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा बनाता है, अग्नि के अर्थों की व्याख्या पूर्व की गई है; उसे लक्ष्य में रख कर पहिले चार मन्त्रों के अर्थ जैसे किये हैं वही इन चार मन्त्रों के जानने चाहियें।

जो मन्त्र आगे लिखे जाते हैं उन से प्रातः सायं हवन करना चाहिये।

मंत्र १८

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥

इस मंत्र के शब्द कई अर्थों के वाचक होने से मंत्र के कई अभिप्राय हो सक्ते है, जिन से भिन्न २ शिक्षा प्राप्त होती है।

(१) अग्नि और प्राण का नाम 'भूः' है। इन

को हविः देकर आनन्द पूर्वक बुलाता हूं वह सुख-दायी होवें।

(२) अग्नि स्वरूप परमात्मा प्राण है ("स प्राणस्य प्राणः") परमेश प्राणों का प्राण और प्राण से प्रिय है उसे हविः देता हूं।

(३) यह हविः उस अग्नि के लिये है जो हमारा प्राण है। जब अग्नि शरीर में कम हो जाता है, तो प्राण गुम हो जाते हैं, और उस का उलट भी ठीक है, क्योंकि जब तक शरीर में प्राण है तबतक शरीर चमकता है तो ऐसे अग्नि या प्राण के लिये हवि दी जाती है। चूंकि प्राण से अग्नि पैदा होता है इस कारण जितना शुद्ध, हवन मे सुगन्धित प्राण शरीर में जावेगा उतना शरीर निरोग रहेगा इस प्रकार उक्त हवन का लाभ इस मन्त्र में ज्ञात होता है।

मंत्र १०.

ओं भुवर्वायवे अपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽ-पानाय, इदन्न मम ॥

(१) व्याहृतियों में 'भुवः' के वायु और अपान अर्थ हैं इन भौतिक देवों को यह आहुति देता हूं, ताकि वायु इस हवि को धारण करके मेरे शरीर की आरोग्यता के लिये मेरे अपान को शुद्ध और संसार में विस्तृत करे। यह आहुति इस वायु और अपान की है मेरी नहीं।

(२) जीवों के आहार को जो वायु नीचे ले जाता है और मूत्र तथा वीर्य को उठाता है वह वायु 'अपान' है। सहस्र प्रकार के रोग अपान शुद्ध न होने से उत्पन्न होते हैं उन की दूरी की प्रार्थना परमेश्वर जो सुखस्वरूप रोगनाशक (भुवः) है उस से की जाती है।

(३) यदि स्वाहा के अर्थ यहां प्राणायाम आदि के लिये जावें जैसा कि कई मंत्रों में आते हैं, तो यह उत्तम शिक्षा भी इसी वाक्य से मिलती है कि शरीर के रोगों को इन विधियों से दूर करना चाहिये।

(४) वह भुवः जो वायु तथा अपान है इन

दोनों के समान जो हमारे शरीर में से रोग, पाप तथा दुष्ट विचार दूर करने वाला बल दाता पिता है उसे नमस्कार हो।

मंत्र २०

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय, इदन्न मम ॥

(१) व्याहृतियों में 'स्वः' के अर्थ सूर्य और व्यान के कहे हैं, इन भौतिक देवों को हमारी आहुति पहुंचे।

(२) जो परमात्मा सूर्य्य के समान प्रकाश करने वाले, तथा जीवों को धारण, पोषण करने वाले हैं वह हमारे व्यान को शुद्ध करें, क्योंकि वह स्वयम् भी व्यान हैं। जैसे शरीर में व्यान फैला होता है वैसे जगत्-स्वामी सारे जगत् में फैले हुवे हैं इस कारण यह आहुति उस परमात्मा के लिये देता हूं।

(३) सुखस्वरूप परमात्मा को नमस्कार हो। हम उस आदित्य को जो व्यान के समान है, आहुति

देते हैं। मानवी शरीर में जैसे व्यान रसों को सब अङ्गों में ले जाता और खून का गर्दिश देता है, वैसे सूर्य बादल बना संसार को रस देता है, वनस्पति बनाता है। आदित्य द्वारा ही अग्निहोत्र के बहुत से लाभ प्राप्त होते हैं, इस कारण उपरोक्त मन्त्र की आवश्यकता है।

मंत्र ८१

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः, इदन्न मम॥

पहिले तीन मन्त्रों का मिला हुआ यह मन्त्र है।

(१) सर्व प्रकार के प्रकाश, बल, कीर्ति तथा ऐश्वर्य के प्राप्त करने का उद्देश्य इस मन्त्र से सिद्ध होता है। अग्नि होत्री इस संसार में वीर्य, ऐश्वर्य, यश और कीर्ति में स्थिर होता हुवा पुनः ज्योतिर्मय द्युलोक में वास करे, ऐसी इच्छा प्रकट होती है।

(२) शरीर में जो पांच प्राण और पांच उप

प्राण हैं, संसार के जो तीन लोक, भूमि अन्तरिक्ष और द्यु, तथा तीन विद्यायें ऋक्, यजुः और साम हैं उन सब का अधिपति जो परमात्मा है, जो कि संसार और उस के पदार्थों से ही प्रकट होता है उस ईश की स्तुति और पूजा सब लोग करें ॥ अग्निहोत्री यदि पापरहित होगा तो शरीर तथा संसार में उसे मित्रता, आरोग्यता, बल, ओज तथा तेज दिखाई देंगे और इनकी वृद्धि प्रतिदिन होती जावेगी।

(३) यह हवि अग्नि वायु, आदित्य नामी परमेश्वर तथा भौतिक पदार्थोंकी मलकीयत है मेरी नहीं इन शब्दों से जैसा कि ऊपर कह आये हैं बड़ी आत्मत्यागता बढ़ती है, इस कारण विचार पूर्वक यह शब्द बोलने चाहियें।

मंत्र २२

ओं आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥

उपरोक्त नव नाम परमेश्वर के हैं, कुछ नामों की व्याख्या की गई है बाकी नामों के संक्षेप अर्थ लिखते हैं--

(आपः) नाम परमात्मा का है यह इस ऋचा से सिद्ध है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्र न्तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

(आपः) जल के समान सर्वत्र गामी, सर्वव्यापक, और शान्तिप्रदाता प्रभु आपः है । (रसः) जो प्रभु मन्युरूप होकर दुष्टों को दण्ड देने वाला, प्रत्येक पदार्थ में रसरूप हो कर वर्त्तमान्, चराचर जगत् का रसमय आधार और रोगनाशक परमेश्वर है उसे रसः कहते हैं ।

(अमृतं) जो अजर, अमर, अविनाशी, शाश्वत, पुराण, अनादि, अक्षर, अजन्मा, नित्य शुद्ध-बुद्धस्वरूप, अनन्त, ध्रुव, अव्यय परमात्मा है यमराज जिस परमेश्वर का एक किंकर है और जो स्वामी अपने सुपुत्रों को मुक्ति देने वाला है वह प्रभु अमृत कहा जाता है ।

(ब्रह्म) (बृह बृहि वृधौ) इस धातु से ब्रह्म शब्द सिद्ध होता है, जो सब के ऊपर विराजमान सब से बड़ा अनन्त बल युक्त परमात्मा है उसे ब्रह्म

नाम से याद करते हैं। ऐसे शुद्ध गुण सम्पन्न परमेश को आहुति देते हैं वह इसे स्वीकार करें।

मंत्र २७

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

(यां) जिस (मेधां) अनेक ग्रन्थों के धारण करने की शक्ति वाली, तत्काल बातों को ग्रहण करने वाली, शुभाशुभ का पूर्णतया विचार करने वाली बुद्धि को (देवगणाः) देव लोग तथा (पितरश्च) पितर लोग (उपासते) धारण करते हैं (तया मेधया) उस सात्विकी बुद्धि से (मामद्य) मुझ को आज (अग्ने) प्रकाश प्रदाता परमात्मन् ! (मेधाविनं) मेधायुक्त (कुरु) करिये।

मेधा मेधा तथा बुद्धि में यह भेद है कि बुद्धि सात्विक, राजसिक तथा तामसिक होसक्ती है, परन्तु मेधा केवल सात्विकी बुद्धि को ही कहते हैं पितरों तथा देवों की ऐसी बुद्धि होती है।

देवगणाः—देव शब्द दिवु धातु से बना है जिस के अर्थ यह हैं "क्रीड़ा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोदमद स्वप्न कान्ति गतिषु"।

देवगण उन महाशयों, महात्माओं और सज्जनों को कहते हैं (क्रीड़ा) जो अपने कर्तव्यों में आनन्द पूर्वक, इन्हें खेल न कि बोझ समझ कर, सर्वदा लगे रहें; (विजिगीषा) जो जन प्राणिमात्र को आत्मवत् देखते हुवे—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।

परोपकार के इच्छुक हों, (व्यवहार) जो जन अन्य नर नारियों को कार्य्यों के भली भान्ति करने की विधियां सिखाते रहें; (द्युति) जो शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बलों से युक्त होने के कारण साधु महात्मा, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, योगी, मुनि, तपस्वी कहलाते हैं। विद्या और योग के तेज से द्युतिमान् होते हैं और विशेषतया (गुहाहितंगह्वरेष्ठम् पुराणम्) जिन के हृदयों की गुफा में ज्योतिमय परमात्मा रहता

हुआ उन के सारे शरीर को प्रज्वलित और प्रकाशित करता है; (स्तुति) उपरोक्त प्रकार से जो विद्वान् परम् जितेन्द्रिय तथा धीर पुरुष हों, वह स्तुति करने योग्य देव होते हैं; (मोद) वह जन जो न केवल स्वयम् आनन्दित रहते हैं परन्तु अपने उत्तम २ व्यवहारों, सदाचारों, सुविचारों से अन्यों को भी मोदित करते रहते हैं। (मद) यह जन ज्ञान से तृप्त, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वेषादि विषयों से रहित, शान्तिमय, निष्काम भाव, वा केवल शुद्ध इच्छाओं के करने वाले धीर त्रिकाल में परमात्मा के सच्चे प्रेम से मदोन्मत्त रहते हैं; (गति) जो लोग ब्रह्मनिष्ठ होने के कारण जानने योग्य हैं, जो जगद्रक्षक तथा पालक हैं और जिन्हें संसार के मनुष्य उत्साह पूर्वक ढूंढ कर प्राप्त करें—ऐसे निष्काम कर्म्मों के कर्त्ता, परोपकारनिष्ठ, विद्या की शान्ति मे प्रकाशित, तेजस्वी, स्तुति तथा प्राप्ति के योग्य, आनन्दमय, आनन्दभुक, तथा ईश्वरप्रेम मे मदोन्मत्त, पुरुषों को देव

कहते हैं। जिस शुक्र, शुद्ध, पवित्र निर्लेप बुद्धि को ऐसे महात्माजन धारण करते हैं उसी मेधा से ज्ञानस्वरूप, हितकारि परमपिता परमात्मा हमें भी सुशोभित करें-ऐसी प्रार्थना ऋचा में की गई है। विद्वान् सदाचारी देवों के गुणों को धारण करने से मनुष्य अपना कल्याण कर सक्ता है अन्यथा नहीं-यह हम प्रतिदिन के अनुभव से देखते हैं और यह बात उपनिषत्कारों ने बारंबार बताई है जैसे

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम् पथस्तत् कवयो वदन्ति।

उठो जागो श्रेष्ठों को प्राप्त कर (आत्मा को) जानो- जन्म जन्मान्तर में सोते आये, इस जन्म में भी कुम्भकर्ण की न्याईं अविद्यारूपी घोर निद्रा में खूब सोते रहे हो, अब तो जागो। श्रोत्रिय, ब्रह्मवेत्ता सर्वोत्तम आचार्य्य की शरण लो, जो कि तुम्हें अत्यन्त सूक्ष्म और कठिन ज्ञानरूपी मार्ग दिखावें। क्योंकि जैसे छुरे की धार अत्यन्त तीक्ष्ण

होती और दुःख से भी उस पर चलना कठिन है वैसे ज्ञानमार्ग पर चलना ज्ञानवान्, मेधावी, वेद-वेत्ता, शान्तात्मा, सूक्ष्मबुद्धि आचार्य्य लोग कठिन कहते हैं।

इस वेदाज्ञा तथा प्रतिदिन के अनुभव को लोग भूल जाते हैं, इस कारण वह अत्यन्त गिरते जा रहे हैं। यदि अग्निहोत्र करते हुवे वह शुद्धबुद्धि ब्रह्मपरायण, आत्मज्ञानी, विशुद्धमन्त्र आचार्य्यों को प्राप्त हों, तो कितना सुख और आनन्द उपलब्ध हो सकता है

देव शब्द की व्याख्या समाप्त हो जाने पर पितर शब्द के संक्षिप्त अर्थ बताते हैं। शतपथ ब्राह्मण में पितर निम्न लिखित मनुष्यों को कहा है:—

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्।
अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्।
बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्।
सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्।........ ... .

सोमसद्--पितर वह मनुष्य हैं जो ऐहलौकिक और पारलौकिक विद्याओं में निपुण हों। विशेष-तया जो महाशय पदार्थविद्या, रसायण, भूतविद्या, नक्षत्रविद्या, शरीरविद्या, वृक्षादिविद्यादि के ज्ञाता हों, जैसे शुश्रुत, चर्क, कणाद, कपिल, गौतमादि।

अग्निष्वात--जो अग्नि तथा विद्युदादि पदार्थों के ज्ञाता और उन के सिद्धान्तों के प्रयोगकर्त्ता हों। विद्युत और वाष्प ने इस संसार में जो चमत्कृत परिवर्तन कर दिये वह किन के द्वारा? वह उन पितरों के द्वारा, जिन्होंने परोपकारार्थ सहस्त्र प्रकार के कष्ट उठाकर अद्भुत अन्वेषण किये हैं परमात्मा कृपा करें कि हम ऐसी कुशलता रखने वाले पितर बन सकें।

बर्हिषदः--जो महाशय विद्यावृद्धियुक्त उत्तम व्यवहारों में स्थित हों--वह बर्हिषद् पितर हैं--जैसे विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, सनत्कुमार, बुद्ध, दयानन्द।

सोमपा--जो ऐश्वर्य्ययुक्त, रोग रहित होते हुए

अन्यों के रोगों के निवारण करने में तत्पर हों, जैसे धन्वन्तरी, वाग्भट्ट, शुश्रुत, चर्क।

हविर्भुज + आज्यपा } —जो मादक तथा मांस से रहित सात्विक भोजन करने वाले महापुरुष हैं।

आज कल उक्त प्रकार के पुण्यात्मा उंगलियों पर गिने जा सकते हैं और प्रत्येक समय म्लेच्छ जाति की हस्ति रही है अतः इस प्रकार की सात्विकी बुद्धि का मांगना आवश्यक है और ऐसे महानुभावियों को पितरों का पद देना कोई अत्युक्ति नहीं भगवद्गीता में सात्विक भोजन का लक्षण इस प्रकार किया है:—

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विक प्रियाः॥

जो भोजन आयु, होशियारी, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति के बढ़ाने वाले हों दूध मधुरादि

रस युक्त, स्निग्ध, बहुत काल तक रहने वाले, हृदय के बढ़ाने वाले ऐसे आहार सात्त्विक जनों को प्रिय होते हैं।

सुकालीन-जिन महाशयों का समय व्यर्थ नहीं जाता परञ्च जीवन पर्यन्त जिन का काल सुविचारों और शुभाचारों के धारण करने तथा कराने और सुशब्दों के सुनने और सुनाने में व्यतीत हो वह भी पितर कहलाते हैं। वस्तुतः पुरातन आर्य धर्मपरायण महापुरुषों का सन्मान करके उन्नति के शिखर पर पहुंचे थे।

यम-जो जन निष्पक्षपात तथा निर्भयता से दुष्टों को दण्ड देनेहारे और श्रेष्ठों का पालन करने हारे हों।

परित्राणाय च साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्

श्रीकृष्ण योगिराज के समान जिन का समय व्यतीत हो।

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि

व जो मनुष्य वेद भगवान् के कथनानुसार आचार करने वाले हैं वह पितर कहलाने योग्य हैं।

इन के अतिरिक्त पिता, पितामह, प्रपितामह माता, मातामही, प्रमातामही, ज्येष्ठ भ्राता तथा भगिनि, गुरु, आचार्य्य भी पितर हैं और उन की शुद्ध बुद्धि का ग्रहण करना आवश्यक है।

यान्यनवद्यानि कर्म्माणि तानि सेवितव्या-
नि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि
तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

उस ऋचा की अद्भुत रचना देखो—परमात्मा का वहां विशेष गुण वाचक नाम अग्नि रखा है न कि वायु, शिव, बृहस्पति। इस भूमण्डल की सब जातियों ने सर्वदा अविद्या का नाम अन्धकार से और विज्ञान का ज्योति में बताया है। स्वयम् वेद कहते हैं।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते

हम मेधा नामी प्रकाशयुक्त पवित्र बुद्धि की याचना सर्वेश से करते हैं, अतः उसके प्रकाशस्वरूप पर यदि विचार करें, तो मिल सक्ती है। और जैसे प्रकाश के इच्छुक होते हुवे चक्षुओं को खोलना चाहिये, न कि कान खड़े करने चाहियें वैसे इस ऋचा में परमात्मा के सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, शान्ति, मंगल तथा सुख-स्वरूपों पर विचार करने से विशेष लाभ न होता। अग्निस्वरूप पर ध्यान देने से प्रकाशप्राप्ति हो सक्ती है। विशेषतया जब प्रकाशस्वरूप परमात्मा पिता हों, तो वह पितावत् दयालु, हितकारी होकर अपने सुपुत्रों को मेधा का दान देंगे-ऐसा निश्चय इस मन्त्र से होता है।

मंत्र २४

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्नमम॥ ओं वायो

व्रतपते[1]......स्वाहा ॥ इदम् वायवे-इदन्नमम ॥२५॥ ओं सूर्य व्रतपते......स्वाहा ॥ इदं सूर्याय-इदन्नमम ॥ २६ ॥ ओं चन्द्र व्रतपते......स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्नमम ॥ २७ ॥ ओं व्रतानां व्रतपते......स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये—इदन्नमम ॥ २८ ॥

(अग्ने) हे सत्य उपदेश के प्रकाशकर्त्ता ज्योतिस्वरूप प्रभो ! (व्रतपते) आप सत्यभाषण आदि धर्मों के पालन कराने हारे हैं। (व्रतंचरिष्यामि) मैं व्रत धारण किये हुवे हूं आप के चरणकमलों में व्रत धारण करने वाले के स्वरूप में मैं उपस्थित होता हूं, पितारूप से आप ने मुझपर जो कृपा करनी हो, उससे कृतार्थ करिये।

वह व्रत कैसा है ? एवम्

---

(१) जो शब्द पूर्व मन्त्र में "व्रतपते" से आगे हैं, वह सब बोल कर मन्त्र समाप्त कर आहुति देनी चाहिये।

(अनृतात्) असत्य कर्म, विचार, तथा भाषण को त्याग (अहम्) मैं (सत्यं) सत्य धर्मयुक्त विचार, व्यवहार, भाषण का (उपैमि) अनुष्ठान करता हूं--अर्थात् सत्य की भली भांति परीक्षा कर उस के ग्रहण करने में कभी विलम्ब न करूंगा। और कदापि लोक लज्जा से मैं असत्याचरण में लिप्त न रहूंगा। (तच्छकेयम्) अपनी ज़िम्मेवारी को समझता हुआ सत्यव्रत को पुरुषार्थ से पालन करने की शक्ति का संचय करूं। (तत् मे राध्यताम्) परन्तु हे बलदाता प्रभो ! आप भी मुझ पर कृपा करके इस व्रत को भली प्रकार सिद्ध कराइये।

उपरोक्त पांच मन्त्र अत्युत्तम और सारगर्भित हैं—इस में व्रत धारण करने और सत्य बोलने की शक्ति परमात्मा से मांगी है। उपवास करने और भोजन में कतिपय पदार्थों का त्याग करने से ही मुक्ति नहीं होती। परञ्च सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण होने से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव हो सक्ती है। इन कर्म्मों के करने में कई सहस्र

प्रकार के कष्ट होते हैं। मनुष्य इन दुःखों को न सह कर भयभीत हो, धीरता त्याग निरुत्साही बन कर अपने संकल्पों से गिर जाता है। एक वार व्रत से च्युत होने के कारण उस की धारणा शक्ति ढीली पड़ जाती है। दूसरी वार तोड़ने का साहस हो जाता है, परिणाम यह होता है कि मनुष्य किसी व्रत का पालन नहीं कर सक्ता, परन्तु व्रत तोड़ने का बुरा संकल्प ज्यूं ही उत्पन्न हो, यदि उसी क्षण प्रकाश स्वरूप; वायु के समान सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी; आदित्य के समान जीवों को देखने के लिये चक्षु देने वाले, चराचर के आत्मा, अन्नादि से जीवों के पालक; चन्द्रमा की न्याई अविद्यारूपी रात्रि के समय भूले भटकों को सुपथ पर चलाने वाले; और सन्तों की न्याई व्रत धारण कराने वाले परमात्मा का ध्यान आजावे, तो कदापि उस व्रत को तोड़ने का उत्साह न हो। जब परमेश्वर की सत्ता का ख़याल और लोक लज्जा मन में नहीं होती, तभी पाप करने का साहस

होता है, परन्तु जब हम विश्वास पूर्वक अपने स्वामी को (सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः) सहस्रों आंखों वाला, (तद्दूरे तद्वन्तिके) सब के अन्दर और बाहिर व्यापक होनेवाला, (अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति) और हृदय में अंगुष्ठ मात्र होकर निवास करने वाला जानने लगें, तो कैसे पाप कर सक्ते हैं? जब स्वयम् राजाओं के राजा, राजेश्वरों को भी दण्ड देने हारे न्यायशील सम्राट् हमारे कर्मों को देख रहे हों, तो कुकर्म कौन कर सक्ता है? यह सर्वज्ञान सम्पन्न राजा सर्वत्र व्यापक और न्याय कर्ता है किसी से रिश्वत नहीं लेता और नाही किसी का पक्ष पाती है। आर्य्य नर नारियो! उपरोक्त पांच मन्त्रों में परमात्मा के इन गुणों पर बल दिया गया है—ऐसे परमेश्वर का भय करते हुवे, शुभ व्रत धारण करो और प्रातः सायं व्रत पालन करने का बल उस दयालु पिता से मांगो निस्सन्देह तुम में क्रमशः शक्ति बढ़ती आवेगी। यदि पश्चिमीय जातियों की उन्नति तथा सत्कार्य्यता

का और भारतनिवासियों की आधुनिक अधोगति का एक शब्द में रहस्य पूछा जावे, तो वह पश्चिमियों का नियम बद्ध काम करना और पतित आर्य्यों का अनियम में मस्त रहना है। अतः उन्नति तथा धर्म के इच्छुक आर्य्यजन! वेद की आज्ञानुसार जब तुम लोग व्रत धारण करोगे तथा नियम बद्ध रहोगे, तभी तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा नहीं।

मन्त्र २९

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव
यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥

(देव) हे सकलैश्वर्य्ययुक्त देव! (सवितः) पूर्ण जगदुत्पादक! (विश्वानि, दुरितानि) सब क्लेशदायक घटनाओं को (परासुव) हम से परे रखिये। (यत्) जो घटनाएं (नः) हमारे लिये (भद्रं) कल्याणकारी, शुभ, सुखदायक, मङ्गलमय होवें (तत्) वह (आसुव) हमारे पास लाइये। (स्वाहा)

अहो !! कैसा हर्ष है कि हमारे कृपासागर पिता ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है।

भाव–इस मन्त्र से पूर्व जो जो प्रार्थना परमात्मा से करनी थी कर चुके हैं, परन्तु हम मनुष्य अल्पबुद्धि, अदूरदर्शी तथा स्वशुभाशुभ को भली भांति न जानने वाले परञ्च शीघ्र प्राप्त होने वाली और वर्तमान काल में ही सुख देने वाली वस्तुओं को ढूंढने वाले हैं। वस्तुतः भला किस पदार्थ में है–इस का कमज्ञान है, परन्तु परमात्मा सविता पिता है वही बन्धु, जनिता और वही विधाता है। उसी पर विश्वास करना चाहिये कि जो हमारी हितकारी मङ्गलकारी वस्तुएं होंगी, वह स्वयं पुत्रों को प्रदान करेगा। हमें वस्तुओं के नाम लेकर मांगने की आवश्यकता नहीं। पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास हो कि:—

Whatever He gives, He gives the best,

जो कुछ प्रभु देते हैं वह सुखकारी होता है। ऐसा जान कर हमें सन्तुष्ट रहना चाहिये और उसी

विश्वास से 'स्वाहा' शब्द निकाल कर गद् गद् हृदय होना चाहिये अर्थात् निष्काम भाव से कर्म करते हुए, फल की प्राप्ति परमात्मा की इच्छा पर त्याग, जीवन व्यतीत करना चाहिये ।

मन्त्र ३०

ओं अग्ने नय॑ सुपथा॑ राये ऽअस्मान्विश्वा॑नि
देव वयुना॑नि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम॑ उक्तिं
विधेम स्वाहा ।

(अग्ने) हे अग्निस्वरूप, ज्योतिष्मन् परमेश्वर ! (देव) हृदयों में प्रकाश करने हारे, सुख तथा शुद्ध बुद्धि के दाता, शुभ कर्मों में अपने उपासकों को लगाने वाले, (नय सुपथा) हमें सुखदायक पथ (Path) से ले जाइये—शुभ कर्मों के करने की ही हमें शक्ति दीजिये। (राये) ताकि हम सार्वभौम राज्याधिपति, सर्वानन्दभुक्, अनन्त धनों युक्त, सकलैश्वर्य्य के धारणकर्त्ता हों और सम्पूर्ण प्रज्ञान

विज्ञान को प्राप्त कर सकें। (विश्वानि वयुनानि) आप हमारे सर्व कर्मों को (विद्वान्) जानने हारे हैं। अतः हम बुरे कर्म करके आप से छिप नहीं सकते। (युयोधि) नाश कीजिये (अस्मत्) हमारे (जुहुराणम्) कुटिल (एनोः एनम्) पापाचरणों को। (भूयिष्ठाम्) आनन्द पूर्वक, प्रेम भरी, अनेकानेक, बारं बार (ते) आप स्वामी को (नमः) प्रार्थना नमस्कार पूजा (उक्तिं) स्तुति (विधेम) करें (स्वाहा) सत्य कल्याणी वेद वाणी द्वारा।

भाव—जैसे पूर्व मन्त्र में कहा गया था कि "दुरितानि परासुव" दुःखों, दुर्घटनाओं विपत्तियें को दूर करिये, वैसे इस मन्त्र में प्रार्थना है कि सर्वान्तर्यामी होकर परमेश्वर हमारे सब विचारों, चेष्टाओं और कर्मों को देख रहे हैं, और वह स्वयम् खूब जानते हैं कि हमारे खोटे कुटिल कर्म कौनसे हैं। हमें पूरा ज्ञान नहीं हो सकता, अतः वह स्वयं उन्हें भस्म करें। यह भी अभिप्राय है कि जो प्रार्थनाएं तथा कर्म हम ने करने

थे, वह कर चुके और करते रहेंगे, परन्तु जब इस शरीर को हम त्यागें, तो न्यायकारी दयालु परमात्मा शुभ योनियों में ले जावें और यदि हम मुक्ति के भागी हों, तो हमें देवयान पर ले जावें ।

मन्त्र ३१

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ॥

"भूर्भुवः स्वः" की व्याख्या पूर्व कर चुके हैं। (सवितुः) जो परमात्मा सर्वजगत् का उत्पादक और सर्व ऐश्वर्य्य का दाता है। (देवस्य) जो दिव्यस्वरूप, सुखदाता, जिस की प्राप्ति की कामना सब मनुष्य करते हैं—ऐसे पूज्यपाद प्रभु को, जो साथ ही (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ है (भर्गः) जो यश का दाता, शुद्धस्वरूप और पुत्रों को पवित्रता देने हारा है—ऐसे ईश को (धीमहि) स्तुति करें—उस का ध्यान व धारणा करें- (यः) वह दयालु देव (नः) हमारी

(बुद्धिः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में प्रवृत्त करें ।

यह गायत्री, सावित्री वा गुरु मन्त्र है। बुद्धि ही मनुष्यों को पशुओं से भिन्न करती है, सभ्यों को असभ्यों से पृथक् करती है और इसी मेधा के द्वारा नर नारी परमेश्वर रचित इस संसार को भली भांति जानते हुवे, ईश को अनुभव कर सक्के हैं और फ़िर उस के परम धाम की प्राप्ति कर सक्के हैं, इस कारण बुद्धि प्राप्ति की याचना परमावश्यक है। "यां मेधां" वाले मन्त्र में इस की विस्तृत व्याख्या पर्याप्त है।

मन्त्र ३२.

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च स्वाहा ॥

(शम्भवाय) सुखस्वरूप सुखदायक परमात्मा के लिये (नमः) नमस्कार हो और (मयोभवायच) सत्य, सुख, मुक्ति के हेतु प्रभु को फिर नमस्कार

हो। (शंकराय च) कल्याण करने हारे (मयस्क-राय च) सब प्राणियों को सुख पहुंचाने हारे, आनन्द-स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार हो। (शिवाय च) मङ्गल कारी और (शिवतरायच) अत्यन्त मङ्गल स्वरूप अमृत शान्ति प्रदाता स्वामी को (नमः) बार बार अत्यन्त नम्रता पूर्वक नमस्कार हो।

प्रत्येक जीव सुख, आनन्द, कुशल, कल्याण, मङ्गल, हर्ष की कामना सर्वदा करता है यह शुभकर्मों से प्राप्त हो सक्ते हैं। अग्नीहोत्री आहुतियां देकर एक शुभकर्म समाप्त करने वाला है वह सुख और शान्ति का इच्छुक है। अतः कल्याणनिधि, सुख-सागर, मंगलमय, कुशलभण्डार परमात्मा का स्वरूप सामने लाना चाहिये। शुद्ध तथा दृढ़ कामना की हुई सुफल होती है, सो सर्वदा करनी चाहिये।

मन्त्र ३३

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(पूर्णम् अदः) वह अखण्ड, निर्दोष, अपापविद्ध, शुक्र, शुद्ध, सम्पूर्णब्रह्म, (अदः) अदृश्य, निर्विकार, निराकार, अशब्द, अस्पर्श, अरस, अगन्ध, अरूप, अगोत्र, अवर्ण, अव्रण, अचक्षुः, अपाणिपाद, सुसूक्ष्म, अदृश्य, अकथ्य, अग्राह्य है। (पूर्णम् इदम्) यही ब्रह्म संसार का कर्त्ता हर्त्ता धर्त्ता होने से कारण रूप से अपने कार्य्य में दृष्टिगोचर हो रहा है। (पूर्णात्) उपरोक्त पूर्ण ब्रह्म से (पूर्णम्) पूर्ण आनन्द (उदच्यते) योगी लोग प्राप्त करते हैं। परमात्मा के स्वरूप को स्पष्टतया अनुभव करके पूर्ण आनन्द से आच्छादित हो जाते हैं। (पूर्णस्य........) पूर्ण परमेश्वर के पूर्ण आनन्द को लेकर उस भण्डार में कमी नहीं आती, परन्तु बाकी भी पूर्णानन्द रह जाता है। तालाब में से आधा जल निकाल लिया जावे, तो बाकी आधा रह जावेगा, वैसे ख़याल हो सक्ता था कि पूर्णानन्द तो एक योगीराज ने ले लिया, बाकी कुछ नहीं रहेगा। उस का निषेध किया है कि

आनन्द अपरिमित है, अतः कमी नहीं हो सकी। प्रत्येक मनुष्य शुभकर्म यज्ञ, दान, धर्म, योगाभ्यास करके आनन्द प्राप्त कर सक्ता है और अनन्त आनन्दयुक्त परब्रह्म के आनन्द में कमी नहीं आती। अतः प्रत्येक महाशय को उस उच्च आनन्द की प्राप्ति की याचना सच्चिदानन्द से करनी चाहिये।

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा।

इस मन्त्र को खड़े होके तीन वार पढ़कर तीन आहुतियां देनी चाहियें। उपरोक्त मन्त्रों से हवन करके जो सामग्री और घी बचे उस सारे को तीन भागों से अग्नि में डालना चाहिये। जब मनुष्य अपना सर्वस्व दान करता है, तो उस में अत्यन्त उदारता होती है, यहां भी अन्य प्राणियों के भले के लिये हम अपना सर्वस्व दान करें, ऐसी शिक्षा प्रतिदिन मिलती है। खड़े होकर हवि डालना उचित है, क्योंकि एक तो हम यज्ञ का इस कर्म से सन्मान करते हैं और दूसरा सर्वस्व दान देते समय, ऐसी रीति उचित प्रतीत होती है।

मन्त्र ३४

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

(द्यौः शान्तिः) सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणादि स[illegible]र्ण द्यौ लोक शान्तिकारक हों । (अन्तरिक्षं शा[illegible]ः) पृथिवी और द्यौ लोकों के बीच में आकाश [illegible] वायुमण्डल शान्तिकारक हों । (पृथिवी शान्तिः) भूमि अपने सब पदार्थों सहित सुखकारी होवे । (आपः शान्तिः) वर्षा का जल तथा पृथिवी के समुद्र नदी आदि या शारीरिक प्राण शान्तिदायी हों । (ओषधयः शान्तिः) सोमलता आदि ओषधियां सुखदायी हों । (वनस्पतयः शान्तिः) वटवृक्ष आदि वनस्पति कल्याणकारी हों । अन्नादि अधिक हों कि दुष्काल और अशान्ति न फैले । (विश्वेदेवाः शान्ति) सब विद्वान् लोग या सब इन्द्रियां

उपद्रवनिवारक और मङ्गलकारी हों। (ब्रह्म शान्तिः) जीवात्मा व वेद सुखदायी हों। (सर्वᳬशान्ति) इस जगत् की सम्पूर्ण चराचर वस्तुएं शान्तिदायक हों। (शान्तिरेव) अहो ! शान्ति ही (शान्तिः) शान्ति (मा) मेरे लिये (एधि) प्राप्त हो गई (सा) वह (शान्ति) शान्ति अन्य सब मनुष्यों को भी प्राप्त होवे।

इस प्रकार शान्तिपाठ करके हवन समाप्त करना चाहिये और दृढ इच्छा करें कि सारे दिन और रात शान्ति, मङ्गल, आनन्द, सुख, हर्ष का राज्य रहे, और धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुवे जन्म, मरण, जरा, आधीनता, दीनता, निर्धनता के दुःखों से पार हो मुक्तिधाम की प्राप्ति हो।

॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

